जन जागरण की विचार प्रधान त्रैमासिकी

तेवरी-पक्ष -6

समुझ देखि मन मीत पियरवा।
आसिक होकर सोना क्या रे ?

पाया हो तो देख ले प्यारे।
पाय पाय फिर खोना क्या रे ?

जब अंखियन में नींद घनेरी।
तकिया और बिछोना क्या रे ?

कहैं 'कबीर' प्रेम का मारग।
सिर देना तो रोना क्या रे ?

● कबीर दास

परिचर्चा अंक—१

Scanned by CamScanner

सार्थक सृजन–की प्रस्तुति—

जन जागरण की विचार–प्रधान त्रैमासिकी

तेवरी-पक्ष

अध्यक्ष :— श्री रामचरन गुप्त
संपादक :— रमेशराज
सह-सम्पादक :— योगेन्द्र शर्मा
सुरेश त्रस्त
अरुण लहरी

परामर्श—
श्याम बेबस
दर्शन बेजार
भंवरपाल सिंह
देश बन्धु अग्रवाल
हरद्वारीलाल वशिष्ठ

अंक—छः

वार्षिक मूल्य—दस रुपये
एक प्रति–तीन रुपये

"एक प्रहार : लगातार" का विमोचन

अमर शहीद सरदार भगत सिंह के बलिदान दिवस पर अलीगढ़ की साहित्यिक संस्था सार्थक सृजन के तत्वाधान में कवि दर्शन बेजार के नवीनतम तेवरी संग्रह "एक प्रहार : लगातार" का विमोचन सिविल कोर्ट क्लब अलीगढ़ में जनपद एवं सत्र न्यायाधीश श्री जी० के० माथुर के कर कमलों से डा० रवीन्द्र भ्रमर की अध्यक्षता तथा सुरेन्द्र कुमार श्लेष के संचालन में सम्पन्न हुआ।

इस कृति के सम्पादक एवं प्रकाशक रमेश राज द्वारा मां सरस्वती एवं सरदार भगतसिंह को माल्यार्पण एवं प्रकाशकीय वक्तव्य के उपरान्त श्री दर्शन बेजार ने "एक प्रहार : लगातार" की कुछ तेवरियों का पाठ किया। तत्पश्चात् अधीक्षण अभियन्ता श्री वत्स तथा श्री जी० के० माथुर ने उपरोक्त कृति पर अपने विचार रखे।

चर्चा क्रम को आगे बढ़ाते हुए श्री सूरजसिंह पाल ने काव्य की नई विधा तेवरी का प्रथम स्वतंत्र संग्रह माना। डा० अजवसिंह ने इसे आज की व्यवस्था के बीच एक क्रान्तकारी विचार धारा कहा जो स्वस्थ समाज के निर्माण का सन्देश देती है। डा० शैलेष जैदी ने तेवरी को किसी सीमा तक गजल ही मानते हुए इस प्रथम प्रयास की बेहद सराहना की। डा० वेदप्रकाश अमिताभ ने कहा कि मैं प्रथम बार यह देख रहा हूं कि कवि को अपने प्रथम

(शेष अन्दर के अन्तिम कवर पृष्ठ पर)

साहित्य का बुनियादी सरोकार

मार्च

किसी भी देश या काल के साहित्य के उद्देश्यों में पीड़ित जनता की पक्षधरता इस बात में निहित होती है कि यदि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार की विसंगतियाँ, कुरीतियाँ पनप गई हैं; तो उनके निर्मूलन हेतु साहित्य का प्रयोग एक गाल पर तमाचा खाने के बाद दूसरा गाल करने या प्रेयसी की जांघें सहलाने, प्रकृति-चित्रण करने के बजाय संस्कृति और सभ्यता के तस्करों की मानसिकता पर चाबुक बरसाने में ही सार्थक होगा।

प्रेयसी के घुटनों पर लेट कर उसके धड़कनों के ज्वार-भाटों और चेहरे पर प्रेम प्रसंगों से चढ़ती-उतरती लालामी को ही यदि सूक्ष्म दृष्टि रेखांकित कर सकती है और उसकी अभिव्यक्ति समाज को विकृतियों से दोषमुक्त कर सकती है, तो हमें 'अफसोस' के अतिरिक्त कुछ नहीं कहना। साथ ही सामाजिक यथार्थ का तल्ख अहसास कोई बे-बुनियाद, बाहियात और स्थूल वस्तु है, जिसका अनुभव सिर्फ अपने अन्दर के मैले को बाहर फेंकने और अपने दोष दूर करने तक ही होना चाहिए यानि 'आप भला तो जग भला' को चरितार्थ करना है तो हम यहाँ यह भी निवेदन करना चाहेंगे कि जब हम शोषण, व्यभिचार या चरित्रहीनता पर व्यक्तिगत दृष्टि के बजाय सामाजिक दृष्टि रखते हैं, तब भी अपने दोषों को सर्वप्रथम टटोलते हैं; क्यों कि हम भी उसी समाज के अंग हैं जिस पर हम प्रहार करते हैं। इस स्थिति में यह प्रहार क्या हमारे अपने ऊपर भी नहीं होता ?

यदि दृष्टि की व्यापकता या सामाजिकता काजीपन या स्वयंभू होने की स्थिति है तो हमें इस समाज में न रहकर गुफाओं-कन्दराओं में धूनी रमाकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि के परीक्षण करते रहना चाहिये और अपनी आध्यात्मिकता का दम्भ भरते रहना चाहिये। हमारे देश की विडम्बना यह रही है कि जन–चेतना के लिये जिसने भी पहल की, उसे स्वयंभू, काजी और न जाने किन-किन उपाधियों से विभूषित किया गया।

स्वान्तः हिताय की तथाकथित वांछित साधना, योग और आत्मनियन्त्रण की साधना बनकर जब-जब साहित्य में उतरी, तब-तब उस साहित्य ने समाज को ऐसे 'सोच' के गर्त में डाल दिया; जिसमें मलवा तो हर जगह दिखाई दिया लेकिन उसे बाहर फेंकने की हिम्मत कोई नहीं रख सका। लोगों ने नाक पर या तो कर्म और भाग्य

Scanned by CamScanner

का रूमाल रख लिया या फिर 'परमानन्द' की उस स्थिति में पहुँच गये, जिसमें सड़ांध से उठता भभका भी गुलाबों की महक महसूस हुआ।

सामाजिक त्रासदियों के बीच जीवन के सहज आनन्द का ढिंढोरा पीटने वाले अगर देखा जाय तो आज भी वही लोग हैं जिन्हें संटी खाकर बोझा ढोने की गर्दभ परम्पराओं से जुड़े रहकर अपने आचरण से ऐसी परिस्थितियों को जन्म देते रहना है जो युग-युगान्तर आदमी का खून चूसती रहें।

मानव के आचरण की एक-एक इकाई में आमूल-चूड़ परिवर्तन करने या समाज में क्रान्तिकारी संभावनाएं तलाशने के लिये आवश्यक है कि यातनामयी, कारुणिक दृश्यों से भयाक्रान्त होकर आँखें मूदने या फोड़ने, चीत्कार के बीच कानों में रुई ठूंसने के बजाय लक्ष्य की प्राप्ति आँखें और कान खोले इसी संसार में रहकर करें। साथ ही साहित्य की प्रासंगिकता उसके यथार्थवादी दृष्टिकोणों से जोड़ें, नहीं तो हम साहित्य की उन्हीं कलात्मक या सौन्दर्यवादी रूढ़ियों से बंधे रह जाएंगे, जिसमें कबीर की प्रहार क्षमता, आडम्बरों को चुनौती देने की व्यग्रता या 'पुत्री बेच पिता धन खायो, दिन-दिन मोल सवायो'/मोहि कहा तेरी सीकरी सों काम' (सूरदास) 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि.......कहे एक-एक न सों कहाँ जाइ कहा करी' (तुलसीदास), 'एक न को मेवा मिलै एक न को चने भी नाहिं' (चरनदास), 'सब जादे मिटि के हराम जादे हो रहे (ठाकुर) तथा 'अली-कली ही सों बंध्यौ आगे कौन हवाल' (बिहारी) में हमें कोई तिरोभाव दिखाई नहीं देगा। बिस्मिल, अशफाक, भगतसिंह को साहित्यकार मानना तो दूर, उनका जिक्र करना भी पसन्द नहीं करेंगे। और बेचारे रहीम को गैर साम्प्रदायिक होने के नाते हिन्दी काव्य का दूसरा 'कबीर' स्वीकार ही नहीं पाएंगे (हम साहित्य के ठेकेदार और पंडित जो ठहरे) धूमिल की कविताओं को हम मात्र गाली-गलौज ही मानेंगे, (जैसा कि। अलीगढ़ की डिग्री कालिज के एक हिन्दी प्रवक्ता तथा प्रकाशक के मुख से हमें सुनने को मिला, जब हम 'संसद से सड़क तक' उनके यहाँ से खरीदने गये।) क्यों कि हमें सौन्दर्यानुभूति उसी साहित्याभिव्यक्ति में होती है जो कोमल, कर्णप्रिय और तिरोभाव से मुक्त होती है। ऐसे तथाकथित लोगों या साहित्यकारों से हम पूछना चाहेंगे कि दहेज लालचियों द्वारा मिट्टी का तेल छिड़कर जलाए जाने वाली बहू या बलात्कारियों के बीच छटपटाती नारी की चीत्कार या डकैतों द्वारा एक परिवार पर किये गये लाठी, चाकू और कट्टे से प्रहार की करुण गाथा को वे कौन से लालित्यपूर्ण, कोमल और सुन्दरतम शब्दों में व्यक्त करना चाहेंगे? तथा ऐसी यातनामयी स्थितियों के बीच वे साहित्य का कौन-सा कलापक्ष टटोलेंगे?

यदि कोई साहित्यकार ऐसी स्थितियों में कुव्यवस्था के प्रति सब कुछ कहने का अधिकारी होता है, कलुषता को ललकारता है तो वह वाद खेमे, विधा, का झंडा

उठाए, बाल बिखेरे, कफन का उत्तरीय कन्धे पर डाले, कविता और साहित्य को कितना और कैसे नष्ट कर देगा ? यह सोचने का विषय है।

सच को सच कहने से यदि कवि या साहित्यकार का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है, तो भाड़ में जाए ऐसी कविता या साहित्य जो आदमी को उसके यथार्थ से साक्षात्कार न करा सके।

वक्त के साथ यदि हमारी रूढ़िवादी मान्यताएं न बदलीं और हम मीरा की तरह प्रेम दीवाने होकर जहर पीते रहे, तुलसी की तरह 'कोऊ नृप होइ हमें का हानी', की रट लगाते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब कविता या साहित्य नष्ट हो न हो, रही सही इन्सानियत (यदि है तो) जरूर नष्ट हो जाएगी। तब हमारे सौन्दर्यवादी, अत्याचारी वातावरण के बीच सहज आनन्द को प्राप्त होने वाले रचनाकार साहित्य को कौन से आत्मशुद्धि के दौने में रखकर चाटेंगे ? यह तो आने वाला समय ही बताएगा।

साहित्य का बुनियादी सरोकार सामाजिक चरित्र की सार्थक-अभिव्यक्ति के साथ-साथ उसे परमार्जित करने में भी होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि साहित्य समाज के उस हर चरित्र को जिये जो कहीं न कहीं समाज की संवेदना को छूता है। इस संदर्भ में तेवरी ने समाज के उस दलित, शोषित, पीड़ित जन के चरित्र को जीया है जो भीतर ही भीतर सभ्यता के सौदागरों, राजनीति के ठगों, धर्म और समाज के ठेकेदारों के हत्यारे षडयन्त्रों के बीच मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है।

जहाँ तक गजल का ताल्लुक है वह सदियों से खास आदमी के चरित्र से जुड़ी रही है; जो तेवरी की मान्यताओं, जीवन मूल्यों के एकदम विपरीत जाता है। गजल के साथ सामाजिक दायित्वों या अभिव्यक्ति का ढिंढोरा पीटने वाले रचनाकार सुषमा, सरिता, सारिका, जाहनवी, धर्मयुग, कादम्बिनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान और किसी हद तक लघु पत्रिकाओं में प्रकाशित लैला-मजनू के किस्सों की गौरव गाथाओं का बखान करने वाली गजलों में कौन-सा सामाजिक दायित्व टटोलेंगे ? इमली को आम बताकर, इमली का स्वाद आम की तरह चखने वाले रचनाकारों को पता नही कब यह बात समझ में आएगी कि मदिरा से भरे हुए प्याले को जाम कहा जाता है जहर से भरे हुए प्याले को नहीं। यदि ऐसे रचनाकार जहर को जाम की तरह अधरों से लगाने के आदी हो गए हैं तो इनकी बुद्धि पर तरस खाने को जी करता है। वर्ना स्वतंत्रता आन्दोलन के अगुआ भगत सिंह, चन्द्रशेखर, गांधी और गोखले में/कोठे पर बैठने वाली चम्पाबाई और अँग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली रानी लक्ष्मीबाई, मादाम कामा में तथा प्रधान मन्त्री के रूप में लाल बहादुर शास्त्री और नेहरू में/एक शासक के रूप में सम्राट अशोक और हिटलर में कुछ तो अन्तर करना ही पड़ेगा। वे साहित्य

और समाज के उस चरित्र को किस आधार पर नकारना चाहते हैं जो प्रवृत्तियों, दायित्वों, कर्त्तव्यों के आधार पर भिन्नता लिये हुए है ? क्या लिखाई की एक-सी वस्तुओं जैसे—पेन, पेन्सिल और होल्डर, प्यार वासना की तृप्ति के साधन पत्नी, प्रेमिका, रखैल, वैश्या और कॉलगर्ल, सब्जी पकाने के पात्र कढ़ाई, केतली, डेगची, भगौना व कुकर, रोटी सेकने के साधन चूल्हा, अंगीठी, स्टोव, लक्ष्य तक पहुंचाने वाले मार्ग सड़क, पगडन्डी, दगड़ा, परिवहन के साधन ट्रक, टैक्सी, ट्रेन, बस, गाड़ी, रथ, हेलीकाप्टर व हवाई जहाज, सिंचाई के साधन रहट, पुर, ट्यूबवैल व ढैंकुली आदि में कोई अन्तर नहीं होता है ? यदि बात मात्र कविता ही कहने से चल जाती तो दोहा, सवैया, घनाक्षरी, गीत, नवगीत, कविता, पद, भजन, गजल, हजल, कलमा, मर्सिया, नज्म आदि नामों से पुकारने की क्या आवश्यकता थी ? और काव्य को प्राचीन, भक्ति कालीन, रीतिकालीन, छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता आदि खानों में समीक्षकों तथा आलोचकों ने किस आधार पर और क्यों बाँटा ? दूसरी तरफ कबीर, तुलसी, सूर, विद्यापति, बिहारी आदि की कविताओं को उनके नाम से पुकारने के बजाय मात्र 'कवि की' कहकर अपना काम नहीं चला सकते ? जिन लोगों को सामाजिक और साहित्यिक चरित्र की पहिचान नहीं है, ऐसे लोग आदमी, मनुष्य और पुरुष, जल और पानी में कोई अन्तर स्पष्ट कर पाएंगे, मुझे संदिग्ध ही नहीं असम्भव-सा प्रतीत होता है।

यही बात तेवरी और गजल में सीमा रेखा खींचते हुए तेवरी के कथ्य पर प्रकाश डालने के उपरान्त तेवरी के शिल्प खासतौर से छन्द पर (तेवरी के शिल्प पर चर्चा तेवरी पक्ष—३ में की जा चुकी है।) यहाँ चर्चा करना आवश्यक समझता हूं।

तेवरी के किसी भी छन्द की रचना करते समय स्वर और लय की आवश्यकता होती है। जब कि उर्दू में गजल लिखने के लिये लय के साथ वज्न अर्थात बहर पर ध्यान देना जरूरी होता है। उदारणार्थ—एक साहब ने दूसरे साहब से नीचे का मिसरा देकर गिरह लगाने के लिए अर्थात इसकी जोड़ का दूसरा मिसरा कहने को कहा—

'जो बात की खुदा की कसम लाजवाब की'

दूसरे साहब ने तुरन्त ही मजाक में नीचे वाला मिसरा जवाब में कहा—

'जूते में लगाई है किरन आफताब की'।

दोनों मिसरों में बाईस-बाईस मात्राएं हैं; लय भी एक-सी हैं, इसलिए हिन्दी कवि दूसरे मिसरे को ठीक बता देगा, परन्तु उर्दू बहरों के हिसाब से पहले मिसरे का वजन 'मफऊल फाइलात मफाईलु फाइलुन' तथा दूसरे का 'मफऊल मफाईलु मफाईलु फाइलुन' है" (संदर्भ-सरल पिंगल प्रवेशिका —श्री प्यारेलाल वृष्णिः।)

इस आधार पर तेवरी और गजल के छन्द यदि बारीकी से देखा जाय तो किंचित साम्य नहीं रखते। एक तरफ जहाँ उर्दू में बहरें हैं, ठीक उन्हीं के समान हिन्दी काव्य में छन्द भी हैं। उदाहरणार्थ—

Scanned by CamScanner

चौपाई—१५ मात्रा की होती है जिसके अन्त में गुरु लघु होता है। वैतालिक (श्री हरगंगा) इसी ध्वनि में गाया जाता है—

कत्रसों विप्र खड़ौ जिजमान, दानी को धन दें भगवान।'

(इसी छन्द में उर्दू की यह बहर है—फाअ फऊलन फाअ फऊल।)—आज दिखादो दीद हुजूर।

पीयूष छन्द का हर एक चरण १९ मात्रा का होता है तथा अन्त लघु गुरु होता है।—'नाक का मोती अधर की क्रान्ति से, बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।'

—'साकेत' मैथलीशरण गुप्त

ठीक इसी तरह फाइलातुन, फाइलातुन, फाइलुन (इब्तिदा-ए-इश्क है रोता है क्या—गालिब) गजल की एक बहर भी है।

इसके अतिरिक्त विजात (मुतदारिक), शक्ति (मुतकारिब—उपभेद), सगुण (मुतकारिब-उपभेद), सुमेरु' (हजज महजूफ), प्रिय (सालिम, बिहारी (हजज मकसूर), दिग्पाल (मजारअ अखरब), गीतिका (रमल महजूफ), हरिगीतिका (रजज), फूलमाला (रमल), विधाता (सालिम), खरारी (मुस्तजाद), झूलना (मुतदारिक मजनून-मकतूअ) आदि हिन्दी के छन्द उनके आगे कोष्ठक में लिखी गजल की बहरों के (सामान्य रूप से) समान ही हैं, अगर अन्तर है तो वजन और स्वर-लय के बीच।

इस आधार पर किसी भी गजल की तरफदारी करने वाले रचनाकार का यह कहना कि तेवरी छन्द के आधार गजल ही है। निहायत गैर जिम्मेदार और मूर्खतापूर्ण वक्तव्य होगा। क्योंकि तेवरी के छन्द अपने हैं और गजल की बहरें उसकी अपनी। लेकिन अफसोस तो इस बात का है कि तेवरी पर अधकचरेपन का लांछन लगाने वाले अधिकांश वे ही तथाकथित गजलगो हैं जिन्हें न तो गजल लिखने की तमीज या जानकारी है न तेवरी की।

यदि ऐसे लोग मात्र रदीफ—काफिये (तुकान्तों) आधार पर तेवरी को गजल मानते हैं तो हम उनसे पूछना चाहेंगे कि वे कवित्त और पदों को भी गजल क्यों नहीं रख लेते? रदीफ, काफिये तो वहाँ भी मौजूद हैं, अस्तु—

पद— भक्ति का मारग छीना रे।
नहिं अचाह नहीं चाहना, चरनन लौ लीना रे॥

X X X

कहैं कबीर मत भक्ति का परगट कर दीना रे॥

....

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या॥

X X X

खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सर पटकता है।
हमन गुरुनाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या॥—कबीरदास

Scanned by CamScanner

कवित्त— सोभा को सदन, ससि बदन मदन कर ।
बंदे नरदेव कुवलय वरदाई है ॥
पावन पद उदार, लसति हंसक मार ।
दीपति जलजहार, दिस-दिस धाई है ॥
तिलक चिलक चारु, लोचन कमल रुचिं ।
चतुर-चतुर मुख, जग जिय भाई है ॥
अमल अंबर नील, लीन पीन पयोधर ।
केसौदास सारदा कि, सरद सुहाई है ॥ —केशव दास

खेद है—यह अंक आपके सम्मुख रखने में 'सार्थक मुद्रण केन्द्र' की स्थापना और आर्थिक कठिनाइयों के कारण थोड़ा विलम्ब हो गया है, फिर भी हमें विश्वास है कि आप अन्यथा न लेते हुए इसका स्वागत करेंगे । पूर्व घोषणानुसार यह अंक परिचर्चा अंक-१ के रूप में आपके सामने है, प्रस्तुत अंक में तेवरी पर आमन्त्रित विचारों के साथ-साथ कुछ लेख भी शामिल कर लिये गये हैं, जिन पर आपकी प्रतिक्रिया सादर आमन्त्रित है ।

रमेशराज

टूटते, बिखरते सामाजिक मूल्यों का
ऐतिहासिक दस्तावेज

शीघ्र प्रकाश्य कविता संग्रह

दीदी ! तुम नदी हो

कवि—रमेशराज

मूल्य—दस रुपये

हाल ही में गाँधीजी ने देश का जो भ्रमण किया है। उनका अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गई उनकी प्रशंसा सभाओं में व यदाकदा अशिक्षित जनता को दिये जाने वाले दर्शनों में बीता।

कोई व्यक्ति जनसाधरण की विचार-धारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता। क्या गाँधीजी ने इन वर्षों में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया? क्या कभी उन्होंने किसी संध्या को गाँव के किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया? क्या किसी कारखाने के मजदूर के साथ एक भी शाम गुजारकर उसके विचार समझने की कोशिश की है? पर हमने यह किया है और इसलिये हम दावा करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं।

गाँधीजी घोषणा करते हैं कि अहिंसा की सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बनालेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की इस "चमत्कार की प्रेम संहिता" के प्रचार के लिये अपने आपको समर्पित कर दिया है। वे अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयायियों ने भी किया है। परन्तु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें भारत का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं? वे कितने ओ'-डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं? यदि किसी को नहीं, तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इगलैंड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझाकर इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतन्त्रता दे दें।

'बम का दर्शन' अमर क्रान्तिकारी

–भगवती चरण बोहरा

—:०:—

हुज़ूर ! सरकार ! मेरे परवरदिगार !

आपके बार-बार भोंकने पर भी ये अखवार वाले अपनी पत्रकारिता के प्रति (यदि ये ईमानदार हैं तो) 'आचार संहिता' क्यों नहीं प्रस्तुत करते ? मुझे तो इनकी दही जैसी जमी हुई चुप्पी से अब खटास भरी दुर्गन्ध आने लगी है ।

हुज़ूर ! सरकार ! मेरे परवरगिगार !
आपसे जुड़े हुए देशभक्तों (नेताओं, मन्त्रियों) के काले कारनामों का ये अखवार वाले जब-जब भण्डाफोड़ करते हैं, तब-तब मेरी इच्छा होती है कि इनके चेहरे पर जन द्रोहिता की कालिख पोत दूं और इन्हें देश द्रोही घोषित करके देश निकाला दे डालूं, क्योंकि मुझ जैसा चमचा ही यह बात बखूबी जान सकता है कि आप और आप से जुड़ी इन देश-भक्तों की जमात पर कीचड़ उछालने का मतलब देश की भोंडी तस्वीर पेश करके भोली-भाली जनता को बरगलाना है । (अरे ! हम लाख घिनौने सही पर हैं तो देश के कर्णधार ।)

हुज़ूर ! सरकार ! मेरे परवरदिगार !

हमारी लाख कोशिशों के बावजूद ये इतने स्वाभिमानी और जन दायित्वों के बोझ तले दबे हुए हैं कि इन्हें खरीदा नहीं जा सकता। (जब कि मुझे देखिये मैं कितनी आसानी के साथ आपके झांसे में आ गया और आज-कल देश 'देश भक्ति' के नाम पर देश को लूट रहा हूं । नाक कट गयी है पर सीना ताने चल रहा हूं ।)

हुज़ूर ! सरकार ! मेरे परवरदिगार !

इस तथाकथित ईमानदार पत्रकारिता (जिसे हम और आप पीत पत्रकारिता कहते हैं ।) से जुड़े ये सिर-फिरे पत्रकार अपनी हरकतों से बाज नहीं आ सकते । इसलिये अब पहल आपको ही करनी पड़ेगी ।

'आचार संहिता' की प्रतीक्षा में—

आपका ही

एक पीत पत्रकार

॥ आठ तेवरियां ॥

(एक)

बस अपरिचय ही अपरिचय हर जगह है।
देश खोयी--सी अंगूठी की तरह है॥

मानसूनों---सी बरसती हैं निगाहें।
पूछिये इस त्रासदी की क्या वजह है॥

रोशनी की पैरवी मत कीजिए अब।
बेमुरव्वत देश की हर एक सुबह है॥

छा गया है एक सन्नाटा वतन में।
आज कांटों से गुलाबों की जिरह है॥

(दो)

खून है इस देह में पानी नहीं है।
मौन रहना धर्म की बानी नहीं है॥

वे कहें आजाद कैसे देश अपना।
शीश पर जिनके अभी छानी नहीं है॥

भूख है जब तक खड़ी खलिहान में।
रूप की हमको गजल गानी नहीं है॥

आज के देवासुरी संग्राम में।
अस्थियों का एक भी दानी नहीं है॥

Scanned by CamScanner

(तीन)

कल तक ये कुहरे और घने होंगे।
मौसम के तेवर दिन---दुगने होंगे ॥
अधरों पर थोड़ी भूख उगी होगी।
नयनों में कुछ मीठे सपने होंगे ॥
डूबा होगा कल शहर अंधेरे में।
हथकड़ियाँ ज्योतिपुत्र पहने होंगे ॥
जिन पंखों में आकाश बंधा होगा।
कल शायद वे ही नहीं तने होंगे ॥
जो कत्लगाह में खंजर लिये खड़े।
उनमें कुछ मेरे भी अपने होंगे ॥

(चार)

जिस्म पर जब से उगे हैं पर नये।
हम लगे हैं खोजने अम्बर नये ॥
उठ रहा है धर्मग्रन्थों से धुआं।
आइये हम फिर गढ़ें अक्षर नये ॥
आइने को क्या खबर थी फिर यहाँ।
आयेंगे कल फ्रेम तक मंजर नये ॥
दूर तक उजड़ी हुई हैं बस्तियाँ।
अब तलाशे जायेंगे कुछ घर नये ॥
पीठ पर जंगल, हथेली पर नदी।
नयन में उठने लगे जलधर नये ॥
आदमी कैसे जिये इस भीड़ में।
कौन देगा पेट भर उत्तर नये ॥
खण्डहर हैं प्रश्न चिन्हों से घिरे।
कब लगेंगे नींव में पत्थर नये ॥

Scanned by CamScanner

[पाँच]

इस घुनी लकड़ी की सीढ़ी से लुढ़कता कौन है ?
देखना है, उतने ऊंचे तक पहुँचता कौन है ?
आइनों में खौफ है बेहद यहाँ यह जानकर।
पत्थरों में होड़ है पहले उछलता कौन है ?
डगमगाते हैं कदम फाके के कारण और वो।
कह रहे हैं--पीके सड़कों पे बहकता कौन है ?
एक अंधे आदमी के हाथ में देकर चराग।
कह रहे हो तुम! अंधेरे में भटकता कौन है ?
देखना है, रोशनी के नाम पर लेकर मशाल।
तंग बारूदी सुरंगों से गुजरता कौन है ?
इस शहर में चुप रहो! चिल्लाओगे बेकार है।
एक मुफलिस की भला आवाज सुनता कौन है ?

[छः]

हम मुकीले हैं मगर हमवार हैं।
इस दरो--दीवार के आधार हैं॥
यह शहर कैसा है ? जिसमें रात--दिन।
हर तरफ बीमार ही बीमार हैं॥
इन अन्धेरों से कहो भटकें नहीं।
रोशनी के दूर पे आसार हैं॥
खो गई हैं मंजिलें इनमें कहीं।
रास्ते जो लग रहे दुश्वार हैं॥
हाथ काटे हैं, गला भी काट दो।
हम मगर इस ताज के आधार हैं॥
इससे बढ़कर दुश्मनी क्या और हो।
हमसे कहते हो, तुम्हारे यार हैं॥
कल तलक जो मांगते मन को रहे।
आज वो जिस्मों के दावेदार हैं॥
बन्द कर दोगे जुबाँ, क्या फायदा ?
बात कहने को मेरे अशआर हैं॥

Scanned by CamScanner

(सात)

लोग जब अपनी हकीकत जानने लग जायेंगे।
तब ये तय है जंगलों को भागने लग जायेंगे॥
दूर करिये आस्तीनों से इन्हें, वरना जरूर।
एक दिन ये साँप सर पे नाचने लग जायेंगे॥
रेत हो या राख हो बर्बाद मत करिए यहाँ।
क्या पता कब लोग इसको फांकने लग जायेंगे?
पीठ के कूबड़ छिपाये जो रहे हैं; क्या करेंगे।
आईने जब आईनों के सामने लग जायेंगे॥
अब उसी सूरत में बदलेगा जमाने का चलन।
आग जब हम मुट्ठियों में बाँधने लग जायेंगे॥

(आठ)

इस शहर को क्या हुआ है; कुछ समझ आता नहीं।
क्यूं किसी भी हादसे से कोई घबराता नहीं॥
बंद कमरों की खुली हैं खिड़कियाँ, कुछ कीजिए।
वर्ना वो समझेंगे अपना खून गरमाता नहीं॥
कुछ मुखौटों से पड़ा था वास्ता; सर झुक गया।
आईनों से सामना होता तो शरमाता नहीं॥
जब गिरे सर पर हमारे तेज ओले तो लगा।
बस खुला आकाश है सर पर कोई छाता नहीं।
कर नहीं सकते समन्दर से बगावत दोस्तो!
जब तलक सूखा कुआं गहरा किया जाता नहीं॥
कुछ न कुछ मकसद यहाँ भी 'राम' का होगा जरूर।
बेवजह यह शेर चट्टानों से टकराता नहीं॥

-- **श्री राम शुक्ला 'राम'**
जाफरगंज
फतेहपुर-२१२६५७
(उ० प्र०)

Scanned by CamScanner

तेवरी-पक्ष पाठकीय अलीगढ़

स्थूल आँखें, स्थूल वस्तुओं को देखती हैं। अब सूक्ष्म वस्तुओं को देखने का समय आ गया है। यह तभी सम्भव हो सकेगा, जब हम अपनी ओर देखेंगे, और अपने दोष दूर करेंगे। हमें दूसरों का काजी नहीं बनना चाहिये। —श्री यशपाल जैन दिल्ली।

वक्त या परिस्थिति के अनुसार कथ्य या भावना के तेवर में जो बदलावआता है, वह विधा में बदलाव नहीं ला सकता। —श्री सिद्धेश्वर, पटना।

तेवरी फार्म (रूप) में गजल से मिलती है। फार्म के एक होने से दोहे को किस खाने में बाँटा जाए? फिर भी नीति परक, श्रृंगार और वैराग्य परक दोहे पृथक माने जा सकते हैं। —श्री बाबूराम वर्मा, देहरादून।

'हिन्दी गजल' को 'तेवरी' न कहकर गजल ही कहा जाए तो अच्छा होगा। —श्री जवाहर इन्दु, रायबरेली।

तेवरी के सम्बन्ध में आपकी अवधारणाएं वही हैं जो तथाकथित प्रगतिवादी या जनवादी वर्षों से कहते आए हैं। बुराइयों के विरुद्ध युद्ध या तो विपक्षी राजनेता छेड़ते हैं या जुझारु समाज सुधारक, कवि नहीं।—डॉ० दयाकृष्ण विजय, उदयपुर।

ढेर सारे प्रशंसा-पत्र छापकर आप क्या कहना चाहते हैं? ये पत्र तो आपके लिये हैं, पाठकों के लिये नहीं। —श्री महेश अनघ, ग्वालियर।

आन्दोलन महज घटिया लोकप्रियता के साधन होते हैं। अच्छे लेखन को किसी भी आन्दोलन या बैनर की जरूत नहीं होती। —श्री कौशल पांडेय इलाहाबाद

बड़े खेद और गुस्से के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि तेवरी-पक्ष के पाठकीय स्तम्भ में मेरे नाम से छपे विचार मेरे नहीं हैं।—श्री अजित साहिल इलाहाबाद

आदरणीय बन्धु आपके पत्र (संदर्भ संख्या-तिथि-चतुर्थी, भादों, शु० प०) २०४१) से निम्न पत्रांश छापा गया था।

"तेवरी-पक्ष से हिन्दी साहित्य में एक नयी आवाज उठी है, किन्तु हर नयी आवाज कितनी सार्थक है, कई कारणों पर टिका रहता है," यदि कहें तो इस पत्र का ब्लाक बनवाकर तेवरी-पक्ष के अगले अंक में प्रकाशित कर दिया जाए।

—सम्पादक

तेवरी का उथलापन और जबरन तेज बनाने की ललक, तेवरी के लिये घातक सिद्ध होगी। —श्री जय प्रकाश त्रिवेदी जय, फतेहपुर।

Scanned by CamScanner

तेवरी के शास्त्रीय पक्ष पर जब वार्ता हो तो पूर्वाग्रह या मुखिया बनने की होड़ से हटकर हो, तेवरी को गाली गलौज की तरह प्रयोग न किया जाए। थदानी जैसे महत्वाकांक्षी साहित्य का हित कर पाएंगे, सन्देह।

—श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', बरेली।

रचनाओं के चयन में निर्ममता और सजगता बरतें।

—श्री माधव मधुकर, गोरखपुर

अच्छी इमेज के लिये प्रामाणिक रचनाओं की नई कविताएं, कहानियाँ एवं वैचारिक निबन्ध का प्रकाशन जरूरी है। —श्री राधेलाल बिजघावने, भोपाल।

मैंने अपने पत्र में आपको अपनी गजल की कुछ पंक्तियाँ भेजी थीं, आपने उनको उठाकर तेवरियाँ बना दिया।

संयुक्तांक में सामग्री कुछ भी हो मैंने तो ज्यादा गौर से 'छपे पृष्ठ के मिटने का हादिसा पढ़ा है। और जब तक इसका स्पष्टीकरण नहीं मिल जाता तब तक इस अंक की उपलब्धि 'छपाई मिटाई' को ही मानूंगा।" —फजरुद्दीन बेसर, गुड़गाँव।

आरणीय बन्धु ! उस समय हत्या श्रीमती इन्दिरा गांधी की ही नहीं, भारतवर्ष के प्रधान मन्त्री की भी हुई थी, जिसकी मौत के समय या तत्काल उसके विरुद्ध कुछ भी छापना उचित नहीं समझा। वैसे भी बहादुरी विरोधी के सामने ही कुछ कर गुजरने में होती है, पीठ पीछे नहीं। —सम्पादक

तुम्हारी यह मान्यता एकदम दुरुस्त है कि रचनकार की कथनी और करनी में फर्क नहीं होना चाहिए और जितना ही लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचना के अनुरूप होगा, उतना ही ज्यादा उसका प्रभाव पड़ता है। लेकिन हम मध्यम वर्गीय रचनाकार उतने खरे नहीं हो पाते, जितना कि होना चाहिये, शोषित पीड़ित के साथ हमारी प्रतिवद्धता भी जेनुइन नहीं होती। अपनी पक्ष धरता के तहत हमें जितना चाहिये, वैसा कर नहीं पाते और अक्सर अपनी सुख सुविधाओं और सुरक्षा के के दायरे में सीमित रहते हैं।

क्या हमारी यह कमजोरी मौजूदा समाज व्यवस्था और वर्गीय स्थिति की ही देन नहीं है ? क्या हम लम्बे समय तक आत्म संघर्ष करके ही अपनी दुर्बलताओं से मुक्त नहीं हो पाते ? और क्या सारी कमजोरियों (जिन्हें जस्टीफाई नहीं किया जा सकता) के बावजूद प्रगतिशील जनवादी रचनाकार लेखन के स्तर या श्रम जीवी जनता की पक्षधरता करके सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में योगदान नहीं करते ?

Scanned by CamScanner

मेरी बात छोड़ो, मैं तो बहुत घटिया इन्सान हूं और मैंने सही या बड़ा होने का दावा भी नहीं किया। यदि कथनी और करनी के आधार पर नफरत करोगे तो टालिस्टाय, डिकिन्स, प्रेमचन्द, गालिब, फिराक, डास्टायवस्की जैसे महान साहित्यकारों के कृतित्व से वंचित रह जाओगे। हमें हर इन्सान के लेखन और कृति में जो 'मोटिव' है, उसे लेकर अशिव पक्ष छोड़ देना चाहिए। आदमी के निर्माण का शायद यही रास्ता है।

प्यास लगीथी, तो पानी माँग भी सकते थे। पानी के लिये न पूछना मेरी गलती है पर सम्मान करने की बात मैं नहीं कह सकता। सम्मान में गोष्ठी का दूसरा ही अर्थ होता है। —श्री सव्यसाची, मथुरा।

पत्र-प्राप्ति स्वीकार—सर्व श्री ब्रह्मदेव शर्मा (अलीगढ़), शिवडोयले (बैतूल), संजय सरल (इलाहाबाद), उमाशंकर लोहिया (सीतामढ़ी), जितेन्द्र राठौर (पटना), डा० स्वर्ण किरण (नालंदा), अंकुश्री (रांची), रामकुमार गुप्त (शाहजहांपुर), आदित्य श्रीवास्तव, जया नर्गिस (भोपाल), रामपाल श्रीवास्तव (बलरामपुर), अशोक आंद्रे (दिल्ली), मदन मोहन 'उपेन्द्र' (अलीगढ़)।

—:o:—

॥ तेवरी ॥

रक्त सनी है, सुबह हमारी, आग उगलती शाम।
दोपहरी को लिखा हमने, इन्कलाब के नाम॥

दिन हफ्ते महीने वर्षों को, हमने नहीं जीया।
मौत प्यार से दे गई हमको, अपनी उम्र तमाम।

जब जब जिक्र भूख का आया, कुछ दीवाने लोग।
तपती बालू पर लिख आए, सैलानी पैगाम॥

जिस सूरज की हमें प्रतीक्षा, जल्दी ही निकलेगा।
अन्धकार से शुरू हो गया, किरणों का संग्राम॥

—श्री कैलाश मनहर

तेवरी : एक बलात् अवतरण

—जया नर्गिस

तेवरी की जरूरत तब महसूस की गई जब गजल का जादू हर किसी के सर चढ़कर बोलने लगा। और यह जरूरत उन लोगों ने महसूस की जो गजल के द्वारा लोकप्रिय होना चाहते थे पर गजल लिखने में असमर्थ थे। क्यूंकि गजल के कुछ नियम होते हैं जैसे—काफिया, रदीफ, बहर, वजन और अपना अलग अन्दाज। जब तक ये शर्तें पूरी नहीं होतीं गजल, गजल नहीं होती। इसके लिये गजल की हर बारीकी की पूरी जानकारी हासिल करना जरूरी होता है। यह अध्ययन और लगातार वर्जिश से ही आती है, जाहिर है इसमें समय भी लगता है। जब ये सारी शर्तें पूरी करना मुश्किल लगा तो कुछ लोगों द्वारा गजल को बिगड़े रूप में लाकर उसे तेवरी का नाम दे दिया गया। वर्ना तो गजल अपनी तमाम बंदिशों, नियमों और शर्तों के बावजूद समस्या का समाधान, कुरीतियों पर आघात और दर्द की दवा बनने में पूर्ण समक्ष और सफल है। हिन्दी शब्दों को अपने में समाहित कर सीधे-सीधे चोट करने में माहिर इस विधा की सही उपयोगिता सिद्ध करने वाले एक ही नाम को यहाँ लेना काफी है, वो है दुष्यन्त कुमार। सीमायें और नियम तो हर विधा के अपने-अपने होते ही हैं। गजल में इन नियमों को पूरा करना और अपनी बात, एक पूरी कहानी कम से कम शब्दों में कह देना इस विधा की खासियत है और गजलकार का कमाल भी।

तेवरी लेखकों का यह दावा ही झूठा है कि तेवरी गजल से बिल्कुल अलग, स्वतन्त्र विधा है और यह गजल की तरह किन्हीं नियमों को नहीं मानती। अगर ऐसा है तो तेवरी में गजल की तरह दो-दो पंक्तियों के शेर क्यूं होते हैं ? कहानी से अलग लघुकथा की महत्ता और अस्तित्व तो समझ में आता है। कहानी के विपरीत लघुकथा कम शब्दों में बिना लाग-लपेट और फैलाव के सीधे-सीधे समस्या को मद्देनजर रखते हुए लिखी जाती है। जिसका एकदम से प्रभाव पाठकों पर होता है और वे बिना भटके दृष्टि जमा सकते हैं। मगर तेवरी गजल से किस तरह अलग हैं ? उसका आकार तो हू–ब–हू गजल की नकल है। मगर उसके अन्दर जो नियमों और सीमाओं की कमियाँ हैं वह उसे कसावट भी नहीं दे पाती। मेरे विचार में गजल विधा की भद्दी नकल न करके गजल ही के द्वारा वह कार्य किया जाय जिसे करने के लिये तेवरी को जबरन अवतारित किया गया है।

—:o:—

Scanned by CamScanner

॥ तेवरियां ॥

(एक)

कैसे तुम चट्टानों से टकराओगे ?
कैसे भूखा पेट लिये लड़ जाओगे ?

कुर्सी पर जो सोते रहते ऐसों से।
कैसे अपना देश सुधरवा पाओगे ?

जहाँ प्रजा डरती हो अपने राजा से।
क्या ऐसे राजा से आस लगाओगे ?

लोग यहाँ जो लड़ते–भिड़ते संसद में।
उनको कैसे रोज–रोज समझाओगे ?

-- प्रभु दयाल सारस्वत

समकालीन सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर
प्रहार करता हुआ
तेवरी संग्रह--१

'अभी जुबां कटी नहीं'

सम्पादक--रमेशराज
(सहयोगी मूल्य--५ रुपये)
सशक्त हस्ताक्षर--
अरुण लहरी, अजय अंचल, योगेन्द्र शर्मा
सुरेश त्रस्त, ज्ञानेन्द्र साज, रमेशराज

Scanned by CamScanner

(दो)

दर्द हो गया है होशियार, दवा कीजिये।
मसीहा नहीं रहा असरदार, दवा कीजिये॥

बंद कमरों में नाखून जिस्म को नोच रहे।
चुप्पी साधे हैं पहरेदार, दवा कीजिए॥

भूख की समस्याएं सड़कों पर आ गयीं।
समाधान लगता है लाचार, दवा कीजिये॥

अपनी रोटी जब पोस्टरों पर सेकिएगा।
आश्वासन हुए हैं अखबार, दवा कीजिये॥

हक मांगने को कवच पहन कर जाया करो।
आदमी हो गया धारदार, दवा कीजिये॥

-- कैलाश पचौरी

जन–विरोधी मानसिकता पर एक और प्रहार

तेवरी संग्रह––२

कबीर जिन्दा है

सम्पादक––रमेशराज

(सहयोगी मूल्य––१० रुपये सजिल्द–२० रुपये)

राजेश महरोत्रा, गिरि मोहन गुरु, ऋषभदेव शर्मा देवराज
डा० देवराज, फजल इमाम मल्लिक, राजकुमार निजात
विक्रम सोनी, डा० एन० सिंह, अरुण लहरी, अनिल
'अनल', योगेन्द्र शर्मा, सुरेश त्रस्त, रमेशराज, आदि।

Scanned by CamScanner

(तीन)

अंधेरे का पर कटे शायद।
ये घना कुहरा छंटे शायद ॥

आप चाकू से तने बैठे हैं।
आपका रुतबा घटे शायद ॥

भूख आंतों में उतर आई ॥
रात आँखों में कटे शायद।

हादसे के पार है चीखें ॥
हादसा दम घोंट दे शायद ॥

आदमी है एक मछली--घर।
फिर कोई मछली फंसे शायद ॥

कबूतर ने फड़फड़ाये पर।
ये कबूतर अब उड़े शायद ॥

-- शिव डोयले

जनाक्रोश की सशक्त अभिव्यक्ति
शीघ्र प्रकाश्य तेवरी संग्रह--३

इतिहास घायल है

सम्पादक--रमेशराज
मूल्य--१० रुपये
संग्रह के सशक्त हस्ताक्षर :--
अरुण लहरी, बिजयपाल सिंह, योगेन्द्र शर्मा, सुरेश त्रस्त,
रमेशराज, गजेन्द्र बेबस, अनिल कुमार 'अनिल' रमेशराज आदि।

Scanned by CamScanner

(चार)

पहले अपना खून लाल कीजिए।
तब कलम का इस्तेमाल कीजिए॥

जो पसीने से निकल पाया नहीं।
उस नमक को भी हलाल कीजिए॥

आप की बाजीगरी तो देख ली।
सही अर्थों में कमाल कीजिए॥

देखें, कैसे प्रेमचन्द पैदा न हो।
इस कलम को तो कुदाल कीजिए॥

आग पी, कम आग मत कीजे।
झुलसे–चेहरों को मशाल कीजिए॥

-- रघुनाथ 'प्यासा'

सत्यप्रकाशन की अनुपम भेंट

'मचान' तेवरी संग्रह

सम्पादक––पवन कुमार पवन

मूल्य––पांच रुपये, सजिल्द––दस रुपये

संपर्क––श्री पवन कुमार 'पवन', पशु चिकित्सालय, शामली

Scanned by CamScanner

तेवरी : व्यवस्था की रीढ़ पर प्रहार

'तेवरी-आन्दोलन', कुछ प्रकाशन, एक समीक्षा :

आलोच्य :

१—कबीर जिंदा है—सम्पादक—रमेशराज
२—इतिहास घायल है—सम्पादक—रमेशराज
३—एक प्रहार, लगातार—लेखक : दर्शन 'बेजार'
४—अभी जुबाँ कटी नहीं—सम्पादक—रमेशराज
५—तेवरी पक्ष, अंक ३—सम्पादक—रमेशराज

आन्दोलन के संदर्भ राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक या साहित्यक हों, उसकी मौलिक चेतना विद्रोहात्मक और स्वर तिक्त तथा उग्र हुआ करता है। किसी व्यवस्था के बोझ-तले कसमसाते हुए बहुतेरे लोग परिवर्तन की प्रतीति से अपने तेवर उभार लेते है और अपने वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रहार से व्यवस्था पर निरन्तर चोट करते रहते है। यह सही है कि उनमें से अनेक किसी सर्जनात्मक सोच से अनुप्राणित नहीं होते हैं। बस पुरातन के विरुद्ध जेहाद करना ही उनका अभिप्रेत होता है। परन्तु युग—परिवर्तन की प्रक्रिया में उनका भी योगदान कुछ कम करके आंकना अनुचित होगा क्योंकि जब तक कुछ लोग पुराने को तोड़कर मलवा हटाने का प्रारम्भिक कार्य नहीं करेंगे तब तक तामीर के शिल्पकारों को हाथ पर हाथ धरकर बैठना ही पड़ेगा।

अतः तेवरी आन्दोलन की अलख जगाने वाले अलीगढ़ के युवा साहित्यकार निश्चय ही एक स्तुत्य और श्लाघनीय कवि-कर्म में प्राण-प्रण से जुटे हुए हैं। इनमें से कुछ लोग व्यवस्था की रीढ़ पर प्रहार करते हुए उसे गिराने में सन्नद्ध हैं तो दूसरे तेवरीकार नई दिशाओं के मंजर पेश करने में पूरी ईमानदारी से लगे हुए हैं।

'तेवरी' नामकरण अजीबोगरीब-सा लगता है क्योंकि उर्दू-लुगत या शब्द-कोष में 'तेवर' शब्द का तो अस्तित्व है 'तेवरी' का नहीं। तेवरीकारों के फतवे या घोषित 'मैनीफैस्टो' में यह स्वीकार किया गया है कि उर्दू-काव्य में 'गजल' की सरसता, रूमानियत और जेहनियत से प्रभावित होकर स्व० दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी-कविता में गजल लिखने की पहल की।

Scanned by CamScanner

"आपात्काल ने तेवरी के सीने में तिलमिलाते विद्रोह के ज्वालामुखी भर दिये।"

(पृष्ठ-भूमि-अभी जुबाँ कटी नहीं)

अतः उपर्युक्त कथन के अनुसार स्व० दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी-कविता की हाट में गजल का आकर्षक कलेवर लेकर उसमें विद्रोह का चिंतन अवेष्ठित कर उसे एक मौलिक बानगी के रूप में प्रस्तुत किया और दुष्यन्त कुमार कृत हिन्दी गजलों की सर्व-प्रियता और ग्राह्यता पर प्रश्न-चिह्न लगाना दुष्कर होगा। लेकिन दुष्यन्त कुमार ने अपनी रचना-धर्मिता को तेवरी-संज्ञा से कभी विभूषित किया हो—ऐसा तो याद पड़ता नहीं। यह भी श्री नीरज, श्री बलवीर सिंह रंग, श्री साहिर लुधियानवी और श्री सूर्यभान गुप्त ने अपनी गजलनुमा रचनाओं को तेवरी नाम से अभिहित किया हो, कभी यह भी सुनने में नहीं आया। तो इन नामधारी प्रख्यात कवियों को तेवरी-आन्दोलन के खेमे में ले आना यदि प्रामाणिक है तो इस आन्दोलन के जन्म-दाताओं और पक्षधरों की साहित्यक मुहिम की एक भारी जीत समझी जानी चाहिये अन्यथा आन्दोलन को बालू की दीवार के सहारे खड़ा करने का बाल-सुलभ प्रयास ही कहा जाएगा। गजल शब्द स्त्रीलिंग है अतः उसका हिन्दीकरण करते हुए लिंगानुरूप तेवरी नाम दिया जाना भाषायी उठापठक है, महज आन्दोलन के बपतिस्मे की गरज से, उसके पीछे अकाट्य तर्क, संस्कार और संगति ढूंढना मृग-मरीचिका ही होगी। मेरे विचार से प्रचलित शब्द 'तेवर' बखूबी चलता।

फिर भी यह निर्विवाद है कि अपने स्पष्ट, सपाट और सीमित उद्देश्य में तेवरी-क्रम की रचनाएं पुरजोर और पुरअसर हैं। आज के आस्थाहीन युग में जबकि जीवन-मूल्यों का भारी क्षरण हो रहा है और समाज की सतह पर कहीं टीले और कहीं गड्ढे नजर आते हैं, शोषकों और वंचकों के क्रूर पंजों में क्षत-विक्षत मानवता त्रस्त और असहाय होकर अधर में लटकी हुई है, भाव-प्रवण और संवेदनशील कवियों और खुशनवरों का मर्माहत होकर कड़ी-कड़वी बातें कहना एक बड़ी जरूरत है और युग-धर्म भी। कविता विषय-विलास और वाग्विलास की वस्तु नही, अँग्रेजी कवि मैथ्यू अर्नाल्ड के शब्दों में 'जीवन की व्याख्या' है।

तेवरी-आन्दोलन के कवियों ने दलित, शोषित और दग्ध समाज के निरूपाय आखेटों का पक्ष लेकर अपने पैने वाग्बाण अहेरियों पर चलाए हैं। कहना न होगा कि इन वाणों की अनी विष-बुझी भी है—

खादी आदमखोर है, लोगो !
हर टोपी अब चोर है, लोगो ! (अभी जुबाँ कटी नहीं)

[तेवरी-पक्ष-6

Scanned by CamScanner

तेवरियों का मुखर स्वर कटु, उग्र और प्रहारक है लेकिन वर्ण्य-विषय की व्यापकता इन लघु रचना-अभ्यासिकाओं की सार्थकता को चरितार्थ अवश्य करती है। शिक्षा की व्यर्थता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, नारी-जाति का शोषण, राजनैतिक छल-छद्म, सरकारी नौकरशाहों की काहिली, भूमि-पुत्रों की व्यथा, जन-प्रतिनिधियों की कथनी करनी का अन्तर, भुखमरी, वर्ग-युद्ध, गरज यह है कि तेवरीकारों ने विविधि विसंगतियों पर अपनी पैनी लेखनी चलाई है। अनेक तेवरियाँ भिन्न-भिन्न कवियों की होते हुए भी सम-स्वर और समान अभिव्यक्ति की आलेखना प्रतीत होती है अतः समीक्षक बहुत सी तेवरियों में पिष्ट-पेषण और पुनरावृत्ति की झलक देखने की बात करेंगे लेकिन जब वर्ण्य विषय लगभग एक जैसा हो और अनुभूति का अन्तर्बिम्ब भी समान हो तो अभिव्यक्ति के धरातल पर अनेक कवि भी एक सी बात करने लगते हैं।

इन तेवरियों में रस-परिपाक्य या काव्य-सौंदर्य का अन्वेषण करना बालू से रेशम निकालने जैसा होगा। तेवरीकारों ने ऐसा दावा किया भी नहीं है बल्कि वे तो सायास कोमल-कान्त पदावली से अपने को बचाते रहे हैं। वे इतने सन्तुष्ट हैं कि उनकी तेवरियों के प्रणयन से समाज की तंद्रा टूटे और सर्वहारा का सामूहिक संघर्ष, उत्पीड़न और अत्याचार के नए उत्साह और जिजीविषा से और तेज हो उठे।

इन तेवरी-संग्रहों में दर्शन बेजार कृत 'एक प्रहार—लगातार' इस आलेख की शुरूआत में कहे गए निर्माण-कार्य जैसा है। अपेक्षाकृत संयम और पैने व्यंग्य की शैली में लिखी गई बेजार कृत तेवरियाँ विचारोत्तजक और भावपूर्ण हैं, यथा :—

आदमी को अर्थ दे जीने के जो।
लाइये, तासीर ऐसी कथ्य में ॥

X X X

सड़क पर असहाय पाण्डव देखते।
हरण होता द्रोपदी का चीर है ॥

X X X

जो हिमालय बर्फ से पूरा ढका है।
भूल मत ज्वालामुखी उसमें छुपा है ॥

X X X

कुछ सियासी शातिरों की रोटियाँ सिकती रहीं।
राजनैतिक स्वार्थ में मेरा वतन जलता रहा ॥

X X X

रहबरो ! अब भी समय है, होश लो।
है तुम्हारी कौम पर इलजाम क्यूं ॥

—(एक प्रहार ! लगातार)

Scanned by CamScanner

तेवरी–आन्दोलन की उपादेयता को स्वीकारा जा सकता है। साहित्य-सागर में अनेक जल-धाराओं का आगमन और परस्पर-विलयन होता है तब सागर-तट पर बैठे प्रेक्षक सागर की संयुक्त गहनता और व्यापकता से अभिभूत होते हैं अलग-अलग जल-धारा का आकलन करने में उनकी रुचि नहीं होती लेकिन जलधारा के सहारे-सहारे चलने वाले पथिक की दृष्टि में सागर की विशालता का एहसास नहीं होता है। वह जलधारा का कलरव और उसकी प्रगति की संगीत-लहरी में खोया हुआ उसके प्रति समर्पित सा रहता है। यही बात इन तेवरियों के संदर्भ में उल्लेखनीय है। विशद् हिन्दी साहित्य के सुदीर्घ विस्तार के परिप्रेक्ष्य में साहित्य के अध्येताओं को इन तेवरियों द्वारा जगाए गए रश्मि-आलोक का किंचित उद्‌भास हो सकेगा, इसकी संभावना जरा कम है लेकिन प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य के अन्वेषियों को तेवरी की भाव-भंगिमा चमत्कृत और उद्वेलित करती रहेगी, यह विश्वास है।

काव्य और कला दोनों का मौलिक और चरम लक्ष्य, सत्य. शिव और सुन्दर का भाव-बोध कराना है। यथार्थ सत्य का बहिरंग और स्थूल रूप है, वह समग्र सत्य नहीं। यथार्थवादी कविता अधूरे जीवन का प्रतिबिम्ब हो सकती है, उस व्यापक, सद्यः स्फूर्ति और स्पृहणीय मानव-जीवन की परिकल्पना नहीं हो सकती जिसकी प्रतीति अतीत के लब्ध-प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकारों, विशेषतः कवियों को हुई। काव्य मात्र दर्पण नहीं है; ऐसा होता तो उसे कौन सहेजता। काव्य आलेखन और आह्वान है, उस वास्तविक मानव जीवन का जो धरती की गर्द-गुबार मैल मत्सर से ऊँचा उठकर मानवोचित ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति से सत्य, शिव और सुन्दर की सृष्टि करता है। हाथी के कान या सूँड़ या पैर को हाथी समझना दुराग्रह होगा। अतः तेवरी-आन्दोलन यथार्थ जीवन के एक छोटे पहलू को भले ही उजागर करता हो, उससे बड़े चित्रफलक को सरासर नजर अन्दाज करता है। यही उसकी सीमाबद्धता या संकीर्णता है। सर्रियलिज्म के सहारे भला क्या सौन्दर्यबोध सम्भव है ?

एक बात और ! 'कबीर जिंदा है' संग्रह द्वारा कबीर की सपाट-बयानी, सधुक्कड़ी, अक्खड़पन और पाखण्ड तथा परम्परा पर जबरदस्त अघात करने की वीरोचित प्रगल्भता भले ही निगाह में रखी गई हो, कबीर की रहस्यमयता, अध्यात्म और सरल धर्म को पकड़ने में तेवरीकारों की असमर्थता और उनका बौनापन तेवरियों में कबीर के दोहों, साखियों और रमैनियों को आधुनिकीकृत करने का असफल प्रयास है।

'अभी जुबाँ कटी नहीं' की प्रस्तावना/पृष्ठभूमि में पृष्ठ २ पर सम्पादक द्वारा द्वारा व्यास तुलसीदास, बिहारी, विद्यापति, कालीदास, रत्नाकर और हरिऔध जैसे

Scanned by CamScanner

तेवरी—आन्दोलन की उपादेयता को स्वीकारा जा सकता है। साहित्य-सागर में अनेक जल-धाराओं का आगमन और परस्पर-विलयन होता है तब सागर-तट पर बैठे प्रेक्षक सागर की संयुक्त गहनता और व्यापकता से अभिभूत होते हैं अलग-अलग जल-धारा का आकलन करने में उनकी रुचि नहीं होती लेकिन जलधारा के सहारे-सहारे चलने वाले पथिक की दृष्टि में सागर की विशालता का एहसास नहीं होता है। वह जलधारा का कलरव और उसकी प्रगति की संगीत-लहरी में खोया हुआ उसके प्रति समर्पित सा रहता है। यही बात इन तेवरियों के संदर्भ में उल्लेखनीय है। विशद् हिन्दी साहित्य के सुदीर्घ विस्तार के परिप्रेक्ष्य में साहित्य के अध्येताओं को इन तेवरियों द्वारा जगाए गए रश्मि-आलोक का किंचित उद्‌भास हो सकेगा, इसकी संभावना जरा कम है लेकिन प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य के अन्वेषियों को तेवरी की भाव-भंगिमा चमत्कृत और उद्वेलित करती रहेगी, यह विश्वास है।

काव्य और कला दोनों का मौलिक और चरम लक्ष्य, सत्य. शिव और सुन्दर का भाव-बोध कराना है। यथार्थ सत्य का बहिरंग और स्थूल रूप है, वह समग्र सत्य नहीं। यथार्थवादी कविता अधूरे जीवन का प्रतिबिम्ब हो सकती है, उस व्यापक, सद्यः स्फूर्ति और स्पृहणीय मानव-जीवन की परिकल्पना नहीं हो सकती जिसकी प्रतीति अतीत के लब्ध-प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकारों, विशेषतः कवियों को हुई। काव्य मात्र दर्पण नहीं है; ऐसा होता तो उसे कौन सहेजता। काव्य आलेखन और आह्वान है, उस वास्तविक मानव जीवन का जो धरती की गर्द-गुबार मैल मत्सर से ऊँचा उठकर मानवोचित ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति से सत्य, शिव और सुन्दर की सृष्टि करता है। हाथी के कान या सूँड़ या पैर को हाथी समझना दुराग्रह होगा। अतः तेवरी-आन्दोलन यथार्थ जीवन के एक छोटे पहलू को भले ही उजागर करता हो, उससे बड़े चित्रफलक को सरासर नजर अन्दाज करता है। यही उसकी सीमाबद्धता या संकीर्णता है। सरियलिज्म के सहारे भला क्या सौन्दर्यबोध सम्भव है ?

एक बात और! 'कबीर जिंदा है' संग्रह द्वारा कबीर की सपाट-बयानी, सधुक्कड़ी, अक्खड़पन और पाखण्ड तथा परम्परा पर जबरदस्त अघात करने की वीरोचित प्रगल्भता भले ही निगाह में रखी गई हो, कबीर की रहस्यमयता, अध्यात्म और सरल धर्म को पकड़ने में तेवरीकारों की असमर्थता और उनका बौनापन तेवरियों में कबीर के दोहों, साखियों और रमैनियों को आधुनिकीकृत करने का असफल प्रयास है।

'अभी जुबाँ कटी नहीं' की प्रस्तावना/पृष्ठभूमि में पृष्ठ २ पर सम्पादक द्वारा द्वारा व्यास तुलसीदास, बिहारी, विद्यापति, कालीदास, रत्नाकर और हरिऔध जैसे

Scanned by CamScanner

कवियों को साम्राज्यवादी तुष्टीकरण का साजिशी और पैरोकार कहना ऐसे ही है जैसे चन्द्रमा की ओर मुँह उठाकर थूकना। काव्य के उद्देश्य मर्म लाघव और युगधर्म की सम्यक जानकारी किये बिना ऐसे कथन सुरुचिकर नहीं कहे जा सकते। आन्दोलन यदि गाली गलौज में तब्दील हो जाता है तो उसे जीवन्त और प्रभावी रखना असम्भव है। क्या तेवरीकार काव्य के विविध नियमों से अवगत हैं ?

अस्तु, इन तेवरी-संग्रहों का इतना तो प्रकट महत्व है ही कि आज दुरूह मानव जीवन को झकझोरने में ये तेवरियाँ समर्थ हैं।

—ओम प्रकाश गुप्त 'मधुर'

अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग

डिगम्बर डिग्री कालिज,

डिबाई (बुलन्दशहर)

व्यवस्था की रीढ़ पर :

'एक प्रहार : लगातार'

कवि—दर्शन 'बेज़ार'

संपादक—रमेशराज

मूल्य—पाँच रुपये

संपर्क—१५/१०९, ईसा नगर अलीगढ़

॥ छः तेवरियां ॥

(एक)

हम गुलामी के हुए आदी पिता ।
दे गया कैसी तू आजादी पिता ॥

किस तरह अब तो सुशोभित हो गयी ।
शोषकों के जिस्म पर खादी पिता ॥

जिस किसी ने थामली लाठी तेरी ।
देह पे जनता की बरसादी पिता ॥

—अरुण लहरी

(दो)

हथकड़ी और डंडे बंट रहे हैं ।
और हम कानून-कानून रट रहे हैं ॥

आँखों में जब से तसवीर उभरी है ।
आईनों से चेहरे हट रहे हैं ॥

साबुन से धोयी जाती नहीं सूरत ।
साफ हैं—जो गंदगी के निकट रहे हैं ॥

उंगलियों पे नचा रहे हैं सब को ।
कभी जो खुद नामवर नट रहे हैं ॥

छतरी-सा मैं कब से तना हूं आप पर ।
आप सूखे बादलों से छंट रहे हैं ॥

—विनय प्रकाश

—:o:—

(तीन)

किश्ती है मझदार दोस्तो ।
होशियार, खबरदार दोस्तो ।।

जब जिसको अपना समझा,
छले गये हर बार दोस्तो ।

तुरन्त कोई उपचार कीजिये,
मौसम है बीमार दोस्तो ।

—राजू 'रंगीला'

(चार)

आप बेहद (हमें) दह गये ।
हम से जब तक हुआ, सह गये ।।

दौड़ में जीती बैसाखियाँ,
हम वहीं के वहीं रह गये ।

रेत के तस्करों, अब सुनो—
सब किनारे यहाँ ढ़ह गये ।

जूझते बुलबुले ही सदा—
क्षीर—मंथन—कथा कह गये ।

—पवन कुमार 'पवन'

—:०—

(पाँच)

अजी खामोश क्यूं हैं कुछ तो बोलिये साहब ।
अपनी चुप्पी का भेद खुद ही खोलिये साहब ॥

आपकी चाल से गुरूर छलका पड़ता है ।
अपनी औकात जरा खुद ही तोलिये साहब ॥

सुर्ख फूलों में यूं बारूद बिछाते क्यूं हैं ?
घोलना है फजा में रंग घोलिये साहब ॥

आप मासूम टहनियों पे वार करते हैं ।
अपनी ताकत को (जर्फ से) भी तोलिये साहब ॥

(छः)

सुर्ख आँखों में रत जगे होंगे ।
फिर साजिशों के पर उगे होंगे ॥

जिस्म को भूख का तोहफा देकर ।
वो पशेमान तो हुए होंगे ॥

भूख और मुफलिसी तोबा-तोबा ।
कुछ दरिंदे वहाँ रहे होंगे ॥

—कैलाश पचौरी

—:o—

है कोई तेवरी वाला जो..................

--श्री शम्भु दयालसिंह सुधाकर

तेवरी को मैं साहित्य का ही नहीं, साहित्यकार का भी समर्थ पक्ष मानता हूँ। किन्तु विधा और वाद के स्वरूप में इसे स्वीकारने का कायल नहीं। तेवरी की आत्मप्रज्ञा को अपने में पूर्ण रूपेण सँजोये "कबीर" आज भी हमारे बीच अमर हैं। जब भी समाज में धर्म, व्यवस्था और कर्म विपाक में सिद्धान्तों की लचरता आई है, कलुषता को रचनाकार ने ललकारा है। परन्तु तेवरी को अपने आचरण में उतारना उतना आसान नहीं जितना एक विधा और वाद बनाकर कुछ पिछधरों की एक भीड़ इकट्ठी कर उसे हँगामे का एक स्वरूप देना। यह नितांत कटु सत्य है कि हँगामे से आज तक कोई मशला हल नहीं हुआ। हाँ एक, हजारों आवाजों की मिश्रित आवाज (जिससे कोई अर्थ निकलने का नहीं) जरूर आकाश को भेदती रह सकती है।

तेवरी को मैं साहित्य-सर्जना की साधना का पूर्ण बिन्दु मानता हूँ— जहाँ पहुँच कर कवि "स्वयंभू" की स्थिति को प्राप्त करता हुआ--समाज व्यवस्था और विकृति के प्रति सब कुछ कहने का अधिकारी हो जाता है— उसकी वाणी में वह शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो युगान्तरकारी परिवर्तन को नये स्वर ही नहीं देती वरन् मानव के हृदय–मंच को नई सज्जा और नये तेवर (प्राणवत्ता) प्रदान करती है। इसके लिए साहित्य की साधना कुछ उसी स्तर पर वांछित है जिसे योग या आत्म नियन्त्रण कहते हैं। सर्व प्रथम अपने ही दुराचरण के प्रति तेवरी दृष्टि डालना इसके लिए परमावश्यक है। कहीं किसी ओर से आचरण की रंचमात्र कमी तेवरी बरदाश्त नहीं करती। पर वाद और विधा के बतौर तेवरी को स्थापित करने का लक्ष्य अपने आप में एक दुराचरण ही है, भाई, कविता-कविता है–सृष्टि की आदि से वह अन–गिनत रंगों में, नानाविध शिल्पों में, मानव में मानवता का विधायन करती आई है और इसके साथ ही जो इससे भी महत्वपूर्ण और प्राप्त है, उस इन्द्रि–यातीत अनुभव को भी शब्द श्रृंखला में आबद्ध करती रही है। अशब्द को शब्द देना साहित्यकार के अभिनव शोध की कसौटी रही है।

भारत का पारम्परिक साहित्य स्वांत:हिताय तेवरी का पक्ष धर कभी नहीं रहा। आज यह साहित्य का तिरोभाव ही तो कहा जायगा कि वाद,

खेमे और विधा का झंडा उठाये, अग्रिम पंक्ति में छाती खोले, बाल बिखेरे, कफन का उत्तरीय कंधे पर डाले साहित्यकार को जब अपना निहित स्वार्थी लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो वहीं सारा आडम्बर उतार डालता है और जिसका विरोध करता है उसी का गुण गाने लगता है। साहित्यकार के आचरण की ऐसी घिनौनी मिशालें जनमानस से साहित्य को आमूल काटती जा रही हैं। आचरण के स्तर पर गिरा हुआ आज का साहित्यकार जिसके पास आत्मबल नामक तत्व ही समाप्त हो चुका है–किस बूते पर तेवरी को अपनाने में समर्थ हो सकता है।

योगी को योग, तपस्वी को तप और कवि को तेवरी सिद्ध होती है। यह साहित्य साधना की अतिम परिणति है–जिसे नव अंकुरों ने अपने साथ जोड़कर, साहित्य को (कविता को तो क्या नष्ट करेंगे,) अपने व्यक्तित्व को नष्ट करने का पूरा-पूरा इंतिजाम कर लिया है। मैं कहता हूँ–"हे कोई तेवरी वाला जो अपने आचरण में तेवरी को उतार ले"। इसके लिये सर्वप्रथम अपनी लोलूप इन्द्रियों पर ही तेवरी दृष्टि डालनी होगी--और उस दृष्टिपात से व्यक्तित्व का ढाँचा ही जल कर राख हो जायगा :—

"आपा छाँड़ि जीवित मरै, तब पावै करतार"

तेवरी को कुछ इसी प्रकार पाया जा सकता है।

किसी के विरोध में क्यों न ऐसा जेहाद छेड़ा जाय कि हम मानव की एक-एक इकाई में आमूलचूड़ परिवर्तन कर देंगे। मानव-मानव में व्यक्ति की गरिमा भर देंगे। हम समझायेंगे कि क्या तुम मात्र अर्थ, भोग और सँग्रह के लिए ही पैदा हुए हो मानव। तुम्हारी लिप्सा की यह अंधी दौड़ व्यर्थ है-एक दिन निकट है जब तुम्हें यह सब छोड़ना होगा। जीवन के सहज आनन्द को छोड़ तुम अभिमान का आवरण ओढ़ने पर क्यों तुले हो। पर इस सबके लिये साहित्यकार को स्वयं अपनी कसौटी पर अपने को ही कसना होगा। तब कहीं जाकर समग्रता में आचरण की सभ्यता का जन्म होगा।

मेरे इन विचारों के प्रतिपक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि आज की जैसी विषम परिस्थिति कभी नहीं रही– जहाँ बुद्धिजीवी ठोकरें खाता है और मूढ़ उस पर शासन करता है। आचरणवान सिकुड़ा-सिमटा बैठा है और भ्रष्ट की पताका फहरा रही है, यही न। यह स्थिति पूर्व में भी ठीक ऐसी ही रही है जब कबीर को घोड़े के पीछे बाँध कर खींचा गया, तुलसी को

Scanned by CamScanner

प्रताड़ित किया गया और रहीम को भार झोंकने के लिए बाध्य किया गया। क्या इन कवियों की कविता इन संघर्षों के प्रति तिरोभाव को प्राप्त हुई— कभी नहीं। वे सब मर गये जिनकी पताका लहरती थी और कबीर, तुलसी, मीरा, जायसी, सूर आज भी जिन्दा हैं।

कवि के आचरण में कविता की साधना सर्वदा त्याग की साधना रही है। इसीलिए मीरा ने राणा के प्रति कभी तेवरी नहीं लिखी, तुलसी ने अकबर को अपशब्द नहीं कहे, कबीर ने उस समय के शहंशाह को गाली नहीं दी और जायसी केवल इतना कहकर रह गये थे —

"मोहिका हँसेसि कि कोहरहिं"

अन्त में मैं इतना ही कहूँगा कि हे कवियों—है तुममें कोई जिसने कुदृष्टि के लिए अपनी आँख को ललकारा हो। नाना विधि विकारों से युक्त अपने मन को सचेत किया हो। तेवरी के लिये आवश्यक है सबसे पहले अपनी शारीरिक और मानसिक व्यवस्था जो हर इकाई में तिरोभाव को प्राप्त कर चुकी है, के विरुद्ध जेहाद उठाया जाय। यदि बिना इन सबके केवल विधा और शिल्प के बतौर तेवरी लिखी जायगी, मात्र लिखने के लिए, तो समझ लो चेहरा खिचा-खिचा रह जायगा, मुट्ठी बँधी की बँधी रह जायगी, मुँह अनर्गल प्रलाप के लिए बस खुला रह जायगा और कवि कंकाल मात्र रह जायगा। कविता वह तो कभी नहीं मरी और कभी नहीं मरेगी। वाद मर जायेंगे, खोये काल की आँधी में उड़ जायेंगे, घटक फूट जायेंगे और इनसे जुड़े लोगों का कोई नाम लेवा न रह जायगा। अपने जीवन के चालीस वर्षों के दौरान मैंने भूखी पीढ़ी, अस्वीकृत कविता, मशानी कविता, अगीत, अकविता और नकेनवाद जैसे वादों को मरते और जीते देखा है। कविता अपने आप में इतना विराट आयाम समेटे हैं कि उसे वाद, विधा और विचारों की छोटी सीमा में बाँध कर कवि स्वयं अपने को ही छोटा कर रहा है।

२४१, निर्बल वर्ग आवास विकास प्राधिकरण कालोनी
जेल गार्डन रोड, राय बरेली—२२९००१

—:०—

।। दो तेवरियां ।।

(एक)

मत माँगो, माँगे से कब दी छाँव खजूरों ने ।
काटे ही काटे, निर्बल के पाँव हुजूरों ने ।।
आम आदमी को सिर ढँकने तक को ठौर नहीं ।
बसा अनधिकृत लिये गाँव के गाँव लंगूरों ने ।।
उगता पीपल ही, महलों की खंडित सन्धों में ।
बरगद को कब दी थोड़ी भी ठाँव कँगूरों नें ।।
भोला नहीं, दोहरे चेहरे वाला युग मित्रो ।
उगला विष ही, कब शर्बत ? उन्नाव धतूरों ने ।।
उतरे बिना मुखौटे, मुश्किल अन्तस् पहचानें ।
लिखा राव को रंक, रंक को राव अधूरों ने ।।

—— **दयाकृष्ण विजय**

(दो)

भरे ताल में मछली तड़पे, खुले जवाड़े मगरों के ।
लहर-लहर के आँगन अब बन गये अखाड़े मगरों के ।।
राजनीति के दंगल--दरिया में चुनाव संपन्न हुए ।
चारों ओर बजे डंके की चोट नगाड़े मगरों के ।।
अब ये सूरज को खायेंगे, अब ये चाँद चबायेंगे ।
सान चढ़े–से दाँत नुकीले कौन उखाड़े मगरों के ।।
चपरासी की एक जगह निकली है, इंटरव्यू होगा ।
डरे हुए-से लोग आज रट रहे पहाड़े मगरों के ।।
तन से मन से और लगन से दो ही पर्व जरूरी हैं ।
एक माह में बस दो ही तो हैं पखवाड़े मगरों के ।।

—— **जनक राज पारीक**

Scanned by CamScanner

॥ आठ तेवरियां ॥

(एक)

जिंदगी खातों की वानी–सी रही।
एक अंगूठे की निशानी–सी रही ॥

लूटता झिंगुरी सदा जिसको रहा।
एक झुनियाँ की जवानी–सी रही ॥

दर्द ने मतभेद ऐसे कर दिये।
चीज अपनी थी, विरानी–सी रही ॥

शाख जिनकी काटली हों वक्त ने।
उम्र पेड़ों की कहानी–सी रही ॥

जब कभी भी आजमाया टीस ने।
आँख में दो बूंद पानी–सी रही ॥

(दो)

क्या मिलेगी उन किताबों में खुशी ?
दर्द ने जिनका कि सम्पादन किया ॥

जिंदगी विषधर हमारी बन गयी।
मन को हमने जब कभी चन्दन किया ॥

प्यार हालतों से जिस दिन कर लिया।
भूख ने उस रोज आलिंगन किया ॥

सिर्फ कांटे ही विरासत में मिले।
आपने खुशहाल यूं गुलशन किया ॥

जुल्म सीता उम्र भर सहती रही।
इस तरह हर राम ने शासन किया ॥

[तीन]

हंसते चेहरों को पढ़ा है जब जब ।
दर्द का एक संकलन—पाया ।।

प्यार पैसे से तुल गया यूं भी ।
दोनों पलड़ों में सन्तुलन पाया ।।

वह सफलता भी क्या सफलता थी ।
एक मुश्किल का आगमन पाया ।।

हर तरफ जब कि एक पतझड़ था ।
कुछ दरख्तों पर हरापन पाया ।।

ओ ! अहिंसा के पुजारी तेरा ।
तन पै आरी चलाता मन पाया ।।

(चार)

आदमी से आदमी अनजान सन्तों की तरह ।
हो गया अब खोखला ईमान सन्तों की तरह ।।

रट पपीहे की तरह हर आदमी देने लगा ।
बादलों ने खो दिये हैं कान सन्तों की तरह ।।

इस शहर में है बहुत नाकाम जीना जिंदगी ।
घात करते हैं यहाँ इन्सान सन्तों की तरह ।।

फूल क्यों इस बाग के बिकने लगे बाजार में ।
कर गया फिर बागवाँ अहसान सन्तों की तरह ।।

मैं लुटा इस शहर में हर द्वार पर कुछ इस तरह ।
मुझको लगता हर खड़ा मकान सन्तों की तरह ।।

दोस्तो कैसी है ये सच्चाइयों की पुस्तिका ?
झूठ हैं जिसके सभी व्याख्यान सन्तों की तरह ।।

[पाँच]

इस शहर में खिलखिलाती धूप है।
आदमी को तिलमिलाती धूप है॥

एक तो घायल किया है आदमी।
और उस पर मुस्कराती धूप है॥

रौशनी करने को घातें कर गयी।
आज तो विश्वासघाती धूप है॥

जब बहारें खेलती हैं बाग में।
एक पतझड़ ढूंढ़ लाती धूप है॥

जो परिन्दे उड़ गये ऊँचे बहुत।
उनके पंखों को जलाती धूप है॥

(छः)

चोट हालातों की सह पाए नहीं।
भावना में किन्तु बह पाए नहीं॥

आप जीवन भर मिले नव—वर्ष से।
पर मुबारकवाद कह पाए नही॥

फूल के मानिन्द हँसते उम्र भर।
किन्तु मौसम इस तरह पाए नहीं॥

जिन्दगी सीपी सरीखी जी मगर।
आज तक सागर की तह पाए नहीं॥

दर्द ने स्वागत किया मेहमान—सा।
जब खुशी के घर जगह पाए नहीं॥

हम भी पुजते ओ ! पिता तेरी तरह।
हम मगर पर्दे में रह पाये नहीं॥

Scanned by CamScanner

(सात)

पी गये कितना जहर इन हादिसों में ?
चुक गये कितने शहर इन हादिसों में ?
यूं गये शैशव के दिन, यौवन गया यूं ।
कट गयी सारी उमर इन हादिसों में ॥

फूल अब ये फूल से कहने लगा है—
"हो गये टहनी से डर इन हादिसों में" ॥

प्यार के स्पर्श में इन साहिलों पर ।
कर गयीं चोटें लहर इन हादिसों में ॥

आप भी महसूस करते ये सचाई ।
आप भी जीते अगर इन हादिसों में ॥

(आठ)

यदि हरियाले स्वप्न न हमको छलते यारो ।
'हरी घास पर क्षण भर' हम भी चलते यारो ॥

गजलें लिखते हम भी, तेवर नहीं बदलते ।
यदि लोगों के चेहरे नहीं बदलते यारो ॥

समझौता कर लेते जो हम भी निजाम से ।
सुविधा–साधन सब हमको भी मिलते यारो ॥

मरुथल हेतु उबाल समन्दर में अब लाओ ।
अभियानों के बादल नहीं बरसते यारो ॥

शान्ति नहीं हैं सिर्फ उड़ाना कबूतरों का ।
खतरे कभी नहीं बातों से टलते यारो ॥

—विजय पाल सिं

—:o—

तेवरी : कोई नयी विधा नहीं

—नीतीश्वर शर्मा 'नीरज'

'आम' को 'इमली' कह देने से उसके स्वाद और गुण में जिस तरह कोई अन्तर नहीं आता ठीक उसी तरह नई कविता की वैचारिकता को काव्य की किसी भी विधा में प्रस्तुत करने से उसके भाव और अनुभूति की अभि–व्यक्ति में कोई फ़र्क आता हो ऐसा मुझे प्रतीत नहीं हो रहा है। मैं विषय की प्रधानता को केन्द्र मानकर मूल्यांकन करने का पक्षधर हूँ। किसी विधा विशेष की वकालत मुझे रास नहीं आती।

आज 'हिन्दी गज़ल' नाम से रचनाएँ आ रही हैं और आपके अभि–यान से जुड़े मित्र जो 'तेवरी' नाम से दे रहे हैं उसके मूल में प्रवेश करने पर मुझे कोई खास अन्तर नहीं लगता। इसी तरह कई अग्रज कवियों ने इस आकार में लिखी जाने वाली रचनाओं को अपने-अपने ढंग से संज्ञा दी है जैसे—गीतिका, गीतल, अनुगीत आदि-आदि। इससे विचारों में कहाँ कोई फर्क आया? बात तो अपने-अपने ढंग से हम आज भी वही कर रहे हैं। सिर्फ तर्जे-बयां-बदली है, बयान हम सबका एक ही है।

उर्दू साहित्य में भी प्रवेश करें तो गालिब, मीर, जफर आदि की गजलें और फैज की गज़लें आपको एक ही विषय वस्तु की प्रस्तुति लगती हैं क्यों? उसी तरह निराला, मुक्तिबोध, धूमिल आदि कवियों ने जो हमें अपनी रचनाओं में दिया वह विधा–विशेष से पहचानी जाती है या विचार की प्रधानता से?

इसलिए मैं तेवरी को काव्य की कोई नयी विधा नहीं मानता, बल्कि गज़ल या दोहे का रूप लिए (आकार में लिखी गयी) कविताओं का नया नाम है—'तेवरी'।

जिस तरह एक कप या गिलास में आप दूध भी रख सकते हैं, दवा भी, शराब भी, पानी भी और जहर भी। लेकिन रखे जाने द्रव के आधार पर गिलास या कप का नाम बदलने से उसमें क्या तब्दीली हो जायेगी? उसे गिलास या कप कहने में आपको दिक्कत क्यों महसूस हो रही है?

Scanned by CamScanner

'गजल' को भी में व्यक्तिगत तौर पर उसी 'गिलास' की तरह इस्तेमाल कर रहा हूँ। हमारे पूर्ववर्ती कवियों ने इसमें हुस्नो-इश्क की शराब भरी, अश्कों से लबरेज किया। हम आज उसमें अपने-२ विचारों की तल्खी और खूने-जिगर भर रहे हैं। अब इस आधार पर आप उस 'गिलास' को 'गजल' कहें या तेवरी कोई अन्तर नहीं आता। हाँ जो रूप पर मोहित हैं और जिन्हें आत्मा की पहचान नहीं उन मित्रों को शायद इसमें अन्तर दिखाई पड़े।

बहरहाल, आपके इस अभियान की सफलता की दुआ इस लिये कर रहा हूँ कि चाहे जिस नाम से भी हो, आप मेरी ही आवाज में आवाज मिला रहे हैं और वह आवाज आज के हर दलित, पीड़ित और शोषित इन्सान की है।

ढेवाहाँ, काँटी. मुजफ्फरपुर—८४३१०९ (बिहार)

—:०:—

तेवरी : यूँ गजल कह लीजिए

—यशपाल वैद

तेवरी पक्ष - जिन मुद्दों को उभारता है, उनका सही विशलेषण भी सार्थक--सृजन के तहत हो पाया है। अब तक कविता के इस अछूते प्रारूप पर प्रकाशित चार अंक पढ़ जाने के बाद तेवरी--कविता पर आस्था हो जाना स्वाभाविक क्रिया है। यूँ पहले भी अपनी राय यही रही है कि यह तेवर-जन-आक्रोश के हैं जिनमें यथार्थ का सपाट बयान होते हुए भी एक लय है, जो इसे साहित्यिक राय दे पाती है। जिसे न ही सपाट बयानी, न ही नग्न यथार्थवाद या प्रकृतिवाद कहा जा सकता है। इन तेवरों में सच्ची तड़प है आक्रोश है, चारों ओर के अन्याय, भ्रष्टाचार का युगान्तर विस्फोटक ऑपरेशन है। व्यवस्था-सामाजिक, राजनैतिक-का सही बदलाव हो, इसके लिये पीड़ित–दलित व्यक्ति गालियाँ दिये बिना चुप नहीं रह सकता है लेकिन तेवरी–पक्ष गालियाँ ही तो नहीं, यह साहित्यिक दस्तावेज है, एक ज़िम्मेदारी का सही जायजा है—जिसमें गरीब, मजबूर, लाचार, शोषित आदमी की पुकार है, और उसकी ललकार भी है जो पीड़ाग्रत है।

यू 'तेवरी'–को किसी भी खेमे या वाद से नहीं जोड़ा जा सकता,

खासकर, तब तक, जब तक कि ये स्वाभाविक सत्य–आक्रोश, बनावट का मुखौटा न पहने, न बाहर–न भीतर।

तेवरी कविताएं (यूँ गजल कह लीजिए) जोशीला खून है—जो जनक्रान्ति के लिए नये तेवर देता है—वादों-विचार धाराओं-जीवन दर्शन से अलग-सर्वहारा व्यक्ति का आक्रोश-भोगा हुआ यथार्थ, आँखों देखी, कानों सुनी बात का फलसफा। इसमें वह शक्ति है, जो दबी घुटी हँसी, और दबी-मूरत को मौत के आगोश से छुड़ाने का दम भर सकता है।

यूँ तेवरी गजल है लेकिन उससे इस मायने में अलग पड़ जाती है कि इसमें सोज अपने ढंग का है—जिसका अहसास—एक चीखो—पुकार का सिलसिला है। व्यापक रूप में आप इसे गजल से ही जोड़ेंगे--फिर भी।

यूँ यह बड़ी अजब बात है कि अपनी ओर से कहने के लिये मेरे पास कुछ भी नहीं, क्योंकि मैं अपनी मान्यताओं और अवधारणाओं से सहमत होता दिखाई देता हूँ--यह भी 'तेवरी' की सहज अभिव्यक्ति के पक्ष में ही जाता है–प्रतिक्रिया अनुकूल है-आने वाला वक्त इसका सही जायजा ले पाये-शायद।

८५ K/२०३. जनता नगर, सिविल लाइन्स,
अम्बाला शहर–१३४००३ (हरियाणा)

—:o:—

तेवरी

शठता में हटते न पीछे ऐसे अधिक हठीले लोग।
भीतर–भीतर पुती कालिमा बाहर से चमकीले लोग॥
चिन्ह शेष हैं निर्झरता के कहीं नहीं दिखता पानी।
उर्वरता को गिरबी रखकर हुए सभी रेतीले लोग॥
अन्धकार की खोद सुरंगें बिछा रहे सन्ध्यायी जाल।
एक दूसरों से टकराकर ढूँढ़ रहे हैं टीले लोग॥
जिसको देखो वही कुर्सियों की जानिब दौड़ा जाता।
सत्ता की शराब पी–पी कर सारे हुए नशीले लोग॥
चमचों का प्रतिकार करें जो गद्दारों को धिक्कारें।
कहीं नहीं दिखलाई देते भारत में गर्वीले लोग॥

—गिरि मोहन 'गुरु'

तेवरी का भविष्य : अशिष्ट, भद्दी भाषा के गूढ़ प्रयोग

—राजकुमार 'निजात'

तेवरी शब्द के अन्तर्गत जिन व्याख्याओं की अभिव्यक्ति आपने की है, यह व्याख्या इसकी पृष्ठभूमि से की गई है। स्वयं तेवरी शब्द अपने वक्तव्य को इतने विस्तृत रूप से सार्थक नहीं करता। मगर यह मानने में संकोच नहीं है कि तेवरी-शब्द भावना से जुड़ा है। यह साहित्यिक आन्दोलन एक शोषण मुक्त समाज की संरचना को न केवल अपने अन्तर्मन की पीड़ा में अनुभव ही कर रहा है, बल्कि ऐसे समाज की कल्पना की प्रायोजना से, मौलिक भाव से आबद्ध भी है। मैं समझता हूँ समाज–विरोधी तत्वों को मूल रूप से नष्ट करने में यह आन्दोलन व्यावहारिकता के शिष्ट दृष्टिकोण की त्रैधानिकता लेकर चले। अभी यह आन्दोलन जन-जन के आक्रोश का कन्धा नहीं बन पाया है अभी इसे एक लम्बे पथ से गुज़रने की प्रतीक्षा है। अतः यह कहना समयपूर्व है कि प्रत्येक शोषित एवम् सही व्यक्ति की आवाज को इसका वरद-हस्त मिल चुका है।

मैं समझता हूँ, तेवरी को आखिर मानवता–'वाद' से तो जुड़ना चाहिए ही। 'वाद' से आपका अभिप्राय यहाँ स्पष्ट नहीं है। तेवरी के क्रान्तिकारी विचारों को प्रत्येक तेवरीकार, तेवरी समर्थक, बल पूर्वक एक आवश्यकता मानता है। वर्तमान व्यवस्था का परिवर्तित स्वरूप हमें ठीक वैसे ही तय करना होगा जैसे तेवरी की व्याख्या तय है।

तेवरी का शिल्प, गजल–शिल्प ही माना जाना चाहिए। बेशक यह सत्य है कि इस शिल्प की विषय सामग्री मौलिक है।

उपरोक्त भावों से, जो कि परिचर्चा के प्रारूप के अन्तर्गत प्रदर्शित किये गये हैं, मैं बेबाक कह रहा हूँ कि तेवरी का यह भावात्मक आन्दोलन, आक्रोश की परिधि को तोड़कर, अशिष्ट व भद्दी भाषा के गूढ़ प्रयोग के बीच उन्माद की स्थिति धारण न कर ले। हमें सभ्य रहकर ही अपनी अभिव्यक्ति करनी चाहिए। तभी हम एक सभ्य समाज की रचना को सार्थक कर सकेंगे।

काठ मंडी, सिरसा (हरि०)

—:०:—

Scanned by CamScanner

॥ एक प्रहार : लगातार ॥

कवि---दर्शन बेजार

संपादक---रमेशराज

"क्रान्ति से प्रयोजन है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन आना चाहिए.........यदि सभ्यता के ढाँचे को समय रहते न बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी।"

धारा सभा बम-कांड के अभियुक्त भगत सिंह के मि० पूल की अदालत में दिये गए उपरोक्त बयान का भाव ही सम्भवतः दर्शन बेजार के तेवरी संग्रह 'एक प्रहार : लगातार' का उपजीव्य एवं अभिप्रेत है ! देश की दम तोड़ती संस्कृति जीवन मूल्यों के साथ तथाकथित जन सेवकों, सन्तों, राजनेताओं के बलात्कार से उत्पन्न व्यवस्था को खुलासा कर आम आदमी में सोए संघर्षी तत्वों को प्रहारात्मक मुद्रा प्रदान करना समय की महती आवश्यकता है। 'तेवरी' ऐसी ही कार्यवाही है, जो सामाजिक संत्रास की तिल-तिल भोगी गई पीर का विद्रोही किन्तु स्वस्थ आक्रोश है।

प्रस्तुत संग्रह में अड़तालीस तेवरियाँ हैं। इनमें सामाजिक बदलाव की आग है, आर्थिक-समाजिक शोषण में डूबी अवसरवादी राजनीति को बेपर्दा करने के प्रयास हैं कहीं धर्म और सम्प्रदाय को अपने स्वार्थ के लिये भुनाने वालों का मुखौटा उतारने की कोशिश की गई है तो कहीं कलम को कुर्सी की चाटुकारिता करने पर धता बताई गई है। कुल मिलाकर यह समाज के लुटेरों, आतंकवादियों, मौकापरस्तों, विघटनकारियों के खिलाफ एक भावमय और सृजनशील श्वेतपत्र बन गया है। बेलिन्सकी ने एक जगह कहा है कि आज के सौन्दर्य का आदि और अन्त मनुष्य है, बेजार ने इसी मनुष्य को असहाय, निराश, विवश और त्रासद कुरूपताओं के घटाटोप से उबारकर 'तमसो मां ज्योतिर्गमय' स्थिति में पहुँचाने का अदना-सा प्रयास किया है। इसीलिये अपने इस अदने प्रयास को उन्होंने क्रान्तिधर्मी भगत सिंह को सोंप दिया है।

देश की खोई शान पर आँखें नम कर कवि अपनी बात की शुरूआत करता है। उसे दुख है कि भूख, शोषण, आतंक, उत्पीड़न और अराजकता से त्रस्त जिन्दगी

Scanned by CamScanner

को अब बहशियों की सभ्यता ढोनी पड़ रही है। जिन्दगी अभी तक विश्वासों की मृग-तृष्णा के रेत में पड़ी मछली की तरह छटपटाती रही है—कंठ में बदलाव की आशा—अपेक्षाओं की प्यास को जबरन छिपाए, वह अब डंके की चोट कह देता है कि अब की समझौता परस्त जिन्दगी किसी बेजार की ही थी :

सिर्फ समझौता नहीं है जिन्दगी / एक जलती आग भी है सत्य में ॥

सम-सामयिक जीवन पर राजनैतिक और अर्थ की जकड़न बढ़ती ही जा रही हैं। प्रत्येक घटना या स्थिति के पीछे स्पष्टतः ये ही हावी होते हैं। राजनीतिज्ञों के गिरगिटिया स्वरूप और मत्स्य न्याय व्यवस्था पर कवि खीझ उठता है। वह जानता है कि कानून सिर्फ उन्हीं के लिये है जिनके घर दो जून की रोटियाँ भी नहीं। आज कुर्सी चोरों के लिये है। देवता सींकचों में बन्द हैं। सत्य, न्याय, ईमान निर्वासित हैं। तथाकथित बुद्धिजीवियों की भीड़ भी उन्हीं की बकालत कर रही है जो झूठी सियासत कर रहे हैं, जो लूट के धन से जियारत कर रहे हैं —दोस्ती में अदावत कर रहे हैं। कवि जानता है कि आम आदमी को अपने देवताओं के दर्शन कभी नही होते, मीरा को कन्हैया कहाँ मिला है—गोपियों के पास कृष्ण कब गए हैं? फिर भी यह भीड़तंत्र मीरा—गोपियों के रूप में देर-सवेर झलक पाने को प्रतीक्षारत है। आदमी आज खौफ और आतंक में आकंठ डूबा हुआ है, यहाँ न्याय की बात करना जुर्म है—

रोशनी की बात की जिस आँख ने / आपने उस आँख में तकुवे किये।

या

जो मदारी भीड़ ले जितनी जुटा / लूट लेता उतना वो जनतन्त्र है।

पूंजीवादी शक्तियों का जाल शहरी—कस्बाई और ग्रामीण तीनों जीवनों पर छाया हुआ है। गाँव का सुखी—निश्छल जीवन भी अब इनके विषवमन से विषाक्त हो गया है। राजनीति और अफसरशाही के दलालों ने भले लोगों का जीना दूभर कर दिया है। यौनशोषण, लूट-खसोट, आतंक वहाँ आम बन गए हैं—

लूट की भाषा कपट का व्याकरण / अब बने कौमी—तराने गाँव के।
जिस हवेली को रियाया टेकती मत्था रही/वह हवेली जिस्म के व्यापार का अड्डा रही॥

साम्प्रदायिकता और धार्मिक उन्माद के उत्पादक अलगाववादी धर्म-नेताओं, संतों को भी बेजार की लेखनी ने बख्शा नहीं है। चाहे पंजाब का हो या अलीगढ़-गुजरात-भिवंडी के दंगे—कवि ने सभी के पीछे छिपे तथाकथित संतों/शान्ति-पुजारियों के मंसूबों की कलई खोल दी है। अफवाहों का जहर आपस में विरक्ति पैदा कर रहा है। मजहब हमें करफ्यू की सभ्यता सिखा रहा है—

धर्म के उपदेशकों ने आजकल/शान्ति का प्रस्ताव ठुकराया हुआ है।

या

जान का दुश्मन बना क्यों भिंडरा/सन्त पर हैवानियत आसीन क्यूं?

कविता जो अब तक भावनाओं और मांसलता की रूपपरी बनी बैठी थी वो अब अपने बदलते तेवरों के साथ दिखाई देती है। कविता अय्याशी नहीं कटु यथार्थ है और अय्याश किसी की मजबूरी या मुसीबत को कब समझते हैं ?—

नर्तकी के पाँव घायल हो रहे / देखता अय्याश कब यह नृत्य में।

या

जो विदूषक मंच पर हँसता रहे / सिसकियाँ भरता वही नेपथ्य में।

आज भूख की फसल घर-घर उगी हुई है। पेट की चाहत क्या पहले भी ऐसी थी कि वह पराए हाथ की रोटियाँ भी छीन ले ? पेट ही जिस्मफरोशी को मजबूर कर रहा है। यहाँ तक कि—

हो गये हर रात को अक्सर / भूख में सहवास के टुकड़े।

साहित्यकार समाज का जागरूक प्रहरी होता है। किन्तु यदि प्रहरी ही सिक्काई-संस्कृति के हाथों बिक गया हो तो वह आजाद, बोस, मंगल पाण्डे की तुलना गद्दारों और कफन चोरों से करेगा ही। जब साहित्य मात्र दरबारी होकर रह जाएगा तो कबीर और मीरा, चन्द सिक्कों के लिये ट्रेन बस या मंच—विश्वविद्यालयों में भुनाए जाएंगे ही। निराला बेचारा विक्षिप्त ही रहेगा। नई-नई प्रतिभाओं को खस्सी करने, बौना और बर्बाद करने का षडयंत्र चलता ही रहेगा। ऐसी स्थिति में साहित्य को अंगारों से लिखने के सिवाय चारा ही क्या है ? ऐसे अंगारी साहित्य से क्या भोपाल या नवम्बर में दिल्ली के दंगों को भुलाया जा सकेगा ?—

हादिसा भोपाल जैसा ही यहा पर हो गया/एक जहरीली हवा की हर तरफ चर्चा रही।
कत्ल के दौरान जब मासूम तक बख्शे नहीं/तब यहाँ रोई सुबककर रूह हिन्दुस्तान की।

'एक प्रहार लगातार' को प्रहारक तेवरीकार यह मानकर चलता है कि अत्याचर शोषणविहीन समाज की स्थापना ही उसका मकसद है। और वह उसे तार्किक व शाश्वत ही ठहराता है। उसकी विवशता—आक्रोश कहीं चेतावनी बनते हैं तो कहीं ओज, उत्साह भरी ऐलानी मुनादी—

आप इस 'बेजार' से मिल लें जरा / आग से कुछ रूबरू हो जाएंगे॥
इन अलावों में लकड़ियाँ डालिये / आग थोड़ी और जलने दीजिये।

अथवा

लिख रहा हूं दर्द की स्याही से जिनको /क्रान्ति की बू आएगी कल उन खतों से॥

बस इसी कल के इन्तजार में वह जी रहा है। वह दिनकर की इस मान्यता से सहमत है कि, "दानवी रक्त से सभी पाप धुलते हैं" तभी तो उसका कहना है—

इस जमीं का जालिमों के खून से / अब नया शृंगार होने दीजिये।

इसके साथ ही आलोच्य संग्रह में बेजार ने सुकरात, बिस्मिल, मंजूर, मरियम, द्रोपदी, पांडव, मीरा-श्याम, राम-रावन, निराला-कबीर आदि पौराणिक, वैष्णव

Scanned by CamScanner

प्रतीकों को नवीन अर्थ देकर, मानवीय संवेदना से जोड़कर अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। कृष्ण से तो उसे कुछ ज्यादा ही लगाव दिखाई देता है।

शिल्प और शर्तों की दृष्टि से गजल का प्रतिरूप प्रतीत होती इन तेवरियों को तेवरीकारों ने कथ्य की दृष्टि से एक स्वतन्त्र विधा माना है। बकौल रमेशराज गजल अपनी कोमल सौन्दर्यमयी मानसिकता से बाहर निकलने का साहस बहुत कम कर पाई है, और जहाँ उसने ऐसा किया भी वहाँ अपना विचित्र रूप बना लिया है। तेवरीकार यह मानकर चलते हैं कि—

आदमी को अर्थ दे जीने के जो/लाइये तासीर ऐसी कथ्य में।

प्रस्तुत संग्रह को शृंगार–प्रेमिका से दूर रखना एक उपलब्धि कही जा सकती है। लेकिन देखना यह है कि शृंगार–प्रेम की भावना क्या क्रान्ति के पैरों की हमेशा ही बेड़ियाँ बनती है—प्रेरणा प्रदातक कभी नहीं ? इस अस्पृश्यता के पीछे कोई ग्रन्थि तो नहीं ? दलीय पूर्वाग्रह के साहित्य में 'सहितस्य' भाव होने पर भी मैनीफैस्टो जैसी बू आने की आशंका रहती है। आशा है तेवरीकार यहाँ सतर्क रहेंगे ! विषय (या कथ्य) की पुनरावृत्ति भी तेवरीकारों की कमजोरी बन सकती है। लीक से हटने का कोई भी 'नौजवानी' प्रयास तथाकथित बुढ़ऊ साहित्यदाँओं को रास नहीं आता। तेवरी-आन्दोलन को इस बुर्जुआ–मानसिकता की धुरपटों से सतर्क रहना पड़ेगा।

कुल मिलाकर 'एक प्रहार : लगातार' उत्तम प्रेरणा प्रदायक संग्रह बन गया है। इस सामाजिक-राष्ट्रीय संत्रास के समय बेजार की बेजारी एक जागरूक बुद्धिजीवी-साहित्यजीवी की पीड़ा है और प्रस्तुत संग्रह उस पीड़ा-प्रसूति का परिणाम। परि–स्थितियाँ कितनी भी विपरीत और त्रासद क्यों न हों मनुष्य की जिजीविषा के समक्ष अतंतः बौनी हो जाती हैं। क्योंकि हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "मनुष्य परि—स्थितियों से बड़ा है–बशर्ते वह 'मनुष्य' हो, किसी तरह जीवित रहकर मरने की तैयारी करते रहने वाला भुनगा नहीं–मनुष्य।" दर्शन बेजार का यह प्रथम संग्रह मनुष्य की इसी अदम्य शक्ति को जुझारू रूप देने का ईमानदार प्रयास है। आशा है बेजार जी दुष्यन्त कुमार की तरह यह सिद्ध करने का हमेशा साहस रखेंगे कि—

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"

—मधुसूदन शर्मा
राजकीय मा० विद्यालय
सगाली (अरुणाचल प्रदेश)

—:०:—

Scanned by CamScanner

"तेवरी और गजल, अलग-अलग नहीं" गजल-

—कैलाश पचौरी

मैंने आपके सम्पादन में प्रकाशित 'तेवरी पक्ष' के कुछ अंक देखे हैं और उनके बावत पाठकीय प्रतिक्रिया से भी अवगत होता रहा हूँ। मसलन एक आम प्रतिक्रिया यह रही कि आपने यह 'तेवरी' नाम ही क्यों चुना है। मैं भी सोच रहा था कि आपको एक पत्र लिखूँ और मालूम करूँ कि इसके पीछे आपकी सही मंशा क्या है, लेकिन वैसा हो नहीं पाया।

जहाँ तक पत्रिका के नामकरण का प्रश्न है यदि इसका नाम 'नये तेवर' रखा जाता तो क्या बुरा था। क्योंकि गजल को चर्चित और प्रतिष्ठित होने के लिये जिन तेवरों की दरकार थी वे तो पूर्व में ही सर्व श्री दुष्यन्त कुमार, महेश अनध, भवानी शंकर, शहरयार, आशुफ्ता चंगेजी, आदि द्वारा दिये जा चुके हैं। लेकिन नाम परिवर्तन जैसी जरूरत उन्होंने भी महसूस नही की। उसमें एक नया क्रिएट करते हुए अपने डिक्शन को माडरेट करने की कोशिश अलबत्ता जारी रखी। बात को थोड़ा स्पष्ट किया जाय तो गजल की भाषा का रंग और उसका ट्रेडीशनल स्ट्रक्चर कायम रखते हुए भी इन लोगों ने कथ्य की जमीन पर बहुत कुछ अपनी ओर से जोड़ना चाहा और वे इसमें कामयाब भी हुए। बुनियादी ढाँचे में रद्दो बदल किये बिना नाम परिवर्तन मेरे विचार से एक बहुत ही भौतिक किस्म की घटना है। जो स्पष्टतः व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का संदेह लोगों के मन में उत्पन्न कर सकती है जबकि भले आपके इरादे वैसे न हों।

आपने अपने पर्चे में लिखा है कि 'तेवरी का गजल से न तो कोई साम्य है और न विरोध ही'। आपका यह कथन भी पूरी तरह बेवाक तथा सच नही है। यह बिल्कुल वैसा ही है कि नीरज कहें कि उनकी 'गीतिका' उर्दू गजल से भिन्न है जबकि उनकी गजलों (या गीतिकाओं) की टैक्नीक पूर्णतः उर्दू टैक्नीक ही है। फिर भी हिन्दी पत्रिकाओं में अपना वैशिष्ट्य (बिल्कुल अनावश्यक) कायम करने की वजह से उन्हें 'गीतिका' लिख दिया गया। तेवरी-पक्ष की अधिकाँश रचनायें भी वेसीकली 'गजल के फार्म में ही हैं। कमोवेश उनका लहजा भी वही है। उन्हें दोबारा पढ़ते हुए भी यह समझ में

Scanned by CamScanner

प्रतीकों

...हीं आता कि उन्हें उर्दू गजल से किन आधार भूत बिन्दुओं के संदर्भ में अलग किया जा सकता है। यह सम्भव है कि 'तेवरी-पक्ष' की गजलें ज्यादा सशक्त, सटीक एवं मारक हों। उसमें निष्ठावान रचनाकारों का ही चयन किया गया हो। लेकिन सिर्फ इस वजह पर ही तो हम उन्हें एक नई विधा (बकौल तेवरी-पक्ष) का उद्गम नहीं मान सकते।

'गजल' का जहाँ तक सम्बन्ध है, मैं यह मानता हूँ कि मूलतः यह उर्दू का छंद है, ठीक वैसे ही जैसे हम कहें कि दोहा हिन्दी का छंद है। पाकिस्तान की उर्दू शायरी में इन दिनों दोहे खासतौर पर लिखे जा रहे हैं। और सूक्ष्म जाँच पड़ताल करने पर उनमें खालिस हिन्दी रंग अलग से देखा जा सकता है। यह एक दिलचस्प पहलू है कि भारत के उर्दू शायर हिन्दी शब्दों का प्रयोग करने पर आम तौर से कतराते हैं (जबकि हिन्दी कविता में उर्दू शब्दों की भरमार है) लेकिन पाकिस्तान की उर्दू शायरी में भाषाई विभेद किये बिना हिन्दी शब्दों का उपयोग धड़ल्ले से किया जा रहा है। यह बात अनेक उदाहरण देकर सिद्ध की जा सकती है। ठीक ऐसे ही जब हिन्दी रचनाकार गजल लिखता है तब हजार कोशिशों के बाद भी उर्दू रंग छूटता नहीं। किसी को भी देख लीजिए आप, चाहे वे बलवीर सिंह रंग, बाल स्वरूप राही, दुष्यन्त कुमार हों या गोपाल दास नीरज। बरसों लिखने तथा छपने के बाद भी 'हिन्दी गजल' जैसी कोई प्रतिष्ठावान विधा की संरचना नहीं कर पाये।

यह माना जा सकता है कि 'गजल' उर्दू शायरी पर एक लम्बे अर्से तक छायी रही है और कमोवेश आज भी छाई हुई है, यह बात अलग है कि सृजनात्मक लेखन के दृष्टि कोण से अब उसका केन्द्रीय महत्व नहीं रह गया है। इन दिनों नज्म जहाँ गजल पर भारी पड़ती है। साहिर की 'गालिब की 'मजार पर' तथा 'ताज महल' जैसी नज्मों से गुजरते हुए यह स्मरण भी नहीं रहता कि उन्होंने गजलें भी लिखी हैं। गुलजार, अमृता प्रीतम, सरदार जाफरी, कैफी आज्मी की नज्मों ने उर्दू शायरी की आधुनिकता बनाये रखी है। वर्ना आप बतलाइये कि उर्दू की नयी पीढ़ी में कोई ऐसा भी गजल कार है जिसे जिगर, जौक और मोमिन जैसी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि मिली हो? 'सम कालीन भारतीय साहित्य' के पिछले अंक में बशीर बद्र की कुछ गजलें पढ़ने

को मिलीं। आप जानते हैं कि बशीर बद्र का नाम उर्दू के आधुनिक गजल-कारों में सिम्बालिक इम्पार्टेन्स का है। सोचा था गजलों में कोई गैर मामूली बात होगी लेकिन पढ़ते हुए लगा कि वही आम शिकायत उनके यहाँ भी मौजूद है दस गजलों में से आठ यूँ ही–दो उल्लेखनीय। फिर दो में भी ऐसा नहीं कि गजल के सभी शेर एक से वजन के हों। तीन शेर बहुत ऊँचे तो दो फुसफुसे।

आपको यह मानना होगा कि ग्राफ का यह उतार चढ़ाव ही गजल के प्रति एक अजीब सी वितृष्णा भर देता है।

लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि गजलों की सृजनात्मक संभावना चुक गई है। इस दिशा में श्री विनोद तिवारी इन दिनों काफी अच्छा काम कर रहे हैं। (गजल संग्रह शीघ्र प्रकाश्य) 'नया विकल्प' में प्रकाशित उनकी एक प्रसिद्ध गजल का एक शेर कोट कर रहा हूँ। आप देखिये सामंती (दरबारी) संस्कृति पर इसमें कितनी करारी चोट की गई है।

'अपना भारत भवन देख कर भील बस्तर का यूँ कह गया
आप रहते हैं भोपाल में, यह हमारा ठिकाना नहीं'

'आप रहते हैं भोपाल में' पंक्ति का व्यंग्य तथा 'यह हमारा ठिकाना नहीं' के पीछे जो लयात्मक संवेदनशीलता छुपी हुई है दरअसल वही रचना को एक जीवंत ऊर्जा प्रदान करती है। जहाँ तक मुझे स्मरण है–मैंने सबसे पहले आपकी गजलें कथाबिम्ब में पढ़ी थीं और मैं हो नहीं बल्कि अनेक पाठक उनसे प्रभावित हुए थे। इसी तरह दिल्ली से प्रकाशित एक महिला पत्रिका 'रमणी' में तीन शेरों वाली आपकी एक छोटी सी गजल पढ़ी थी और उसे पढ़ कर मैं गहरे तक अभिभूत हुआ था। तीन छंदों में वह बात पैदा कर दी गई थी जो किसी दूसरे कवि द्वारा तीस छंदों में भी नहीं हो पाती। कथ्य इतना साफ सुथरा और बेबाक होकर उतरा था कि कुछ पूछिए ही मत। शलभ श्री राम सिंह की गजलें भी उतनी ही पैनी और बेबाक लगीं। खास तौर से 'कथन' में प्रकाशित उनकी चार गजलें जिन पर व्यापक पाठकीय प्रतिक्रिया हुई। उनके गजल संग्रह 'राहे ह्यात' की गजलों के तेवर भी काफी तीखे हैं लेकिन लहजा चूँकि मुकम्मल तौर पर उर्दू शैली का है अतः उसमें कहीं से भी 'हिन्दीपन' का अहसास नहीं होता। या यूँ कहें कि हिन्दी के सृजनात्मक लेखन से जोड़ने का कोई ठोस अथवा वायवीय औचित्य प्रमाणित नहीं होता।

Scanned by CamScanner

आपने अपने पर्चे में अपने सोच के दायरे में जिन मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहा है वे वाम पंथी घोषणा पत्रों में सैकड़ों बार रिपीट हो चुके हैं। हर जागरुक लेखक (जिसके लेखन की प्रासंगिकता कायम है) चाहता है कि शोषण के दुर्ग को ढहा दिया जाये। मुखौटे नोच लिये जायें, सामाजिक ऐतबार से घातक और विघटन कारी प्रवृतियों पर तेजी से हमला किया जाये। इन्सान को बेहतर तथा जागरुक बना ने की दिशा में कारगर पहल होनी ही चाहिये। ये तमाम बिन्दु हमारे लेखन को अनिवार्यतः रेखांकित करें ऐसे प्रयास तेज और तेजतर रफ्तार में जारी रहने चाहिये।

बहरहाल अच्छा लेखन (अच्छे लेखन से तात्पर्य उस लेखन से है जो पिष्ट पेषण की प्रवृत्ति से दूर होकर मानवीय मूल्यों तथा संवेदना की जमीन पर अपनी जड़ें फैलाता है) सामने आये। लेकिन वह एक खास मीटर तथा लहजे तक ही सीमित न रहे। बात तभी बन सकती है जब उसका कान्टेन्ट ब्रांड हो। मेरी धारणा है कि निष्ठावान प्रतिभाएँ कुछ भी लिखें उसमें उनका रंग तो बोलता ही है और यही उनकी सृजनात्मकता की सही पहिचान भी है। दर असल सृजनात्मकता की शर्तें इतनी कठोर हैं कि केवल 'नाम परिवर्तन' से ही उस जमीन पर प्रतिष्ठित हुआ जा सके यह मुश्किल दिखाई देता है। फिर भी आपके सदाशयी तथा कर्मठ प्रयासों के लिये अपने बधाई देना चाहता हूँ क्योंकि आपके भीतर मुझे वह सृजनात्मक ऊष्मा महसूस होती है जो उस जमीन पर पहूँचने के लिये बेहद जरूरी है जिसका उल्लेख अभी-अभी मैंने किया है : बहर हाल.......................................।

रोमांटिक संबंन्ध के बिना जीवन चल नहीं सकता, क्योंकि व्यक्ति उसका नहीं हो सकता जो प्राप्य है बल्कि वह अप्राप्य का होता है। यही वजह है कि पत्नी के होते हुए भी एक प्रेयसी का होना आवश्यक है।

—जैनेन्द्र कुमार

जनसत्ता पृ० ८, ७ अक्टूबर–८४

Scanned by CamScanner

आज का साहित्य : दायित्व कुछ और भी हैं

--पंकज शर्मा

अभी तक सुख ही सार्वजनिक हुआ करते थे परन्तु अब दुख भी सार्वज़निक होते जा रहे हैं। सभी को सभी के दुखों का अहसास है। मगर यह इसलिये नहीं कि कोई किसी के दुख बाँट लेने को राजी है वरन् इसलिये कि हर कोई दुखी है। और फिर साहित्य तो समाज और समय का दरपन होता ही है, इस कारण वह भी दुखी है। वैसे तो साहित्य का जन्म ही विरोध और दुख स्वरूप (बाल्मीक द्वारा) हुआ था लेकिन आज यह कुछ ज्यादा ही मुखर और कटु हो गया है। साहित्यकार भी इन दुखों से अपना साक्षात्कार कर रहा है। साहित्य की हर विधा में रचनाएँ जैसे तलवार बन उठी हैं। यहाँ तक कि कविता की कोमलतम् विधायें भी दुखों में तप रही हैं। असल में कहना यह है कि कथ्य में भारी परिवर्तन आये हैं और ये कथ्य आम आदमी की जमीन के हैं। लेकिन केवल सपाट बयानी कविता के प्रतिष्ठित अस्तित्व को खतरा तो है ही, साथ ही यह साहित्य के कर्त्तव्य को अधूरा छोड़ देती है। क्या दुखों को उद्घाटित करना ही साहित्य का मात्र कर्तव्य है ? दुख के कारणों की तलाश और उनको नष्ट करने वाली व्यवस्था खड़ी करने में भी तो साहित्य का कुछ कर्तव्य है। आज साहित्य के जरिये जिन सवालों को उठाया जा रहा है, उनका जवाब भी तलाशना आवश्यक है।

आज जब साहित्य के माध्यम से कहा जा रहा है कि नारे झूठ हैं, अर्थात नारों में सत्य का दम और निर्माण की झलक नहीं है, तब इस बात का उद्घाटन करती नारे रूपी कविता झूठ नहीं है ? कविता को क्रियात्मक पक्ष देना आवश्यक है जैसा कि कविता के जन्म के समय ही बाल्मीक ने स्वयम् अस्त्र त्याग कर दिया था। लेकिन आज सिद्धान्त का राग ही ज्यादा अलापा जाता है कर्म में विश्वास कम का ही है।

आदमी के भीतर के खोये हुए आदमी के खोये जाने की चर्चा के बाद उसे तलाशना भी साहित्य का दायित्व है। पर आज साहित्य की सपाट बयानी इस कदर बढ़ रही है कि समाज के घटनाक्रम को कुछ चूरन चटनी मिलाकर लिखा जा रहा है। इसमें साहित्यकार का अपना सोच तो कुछ है

Scanned by CamScanner

ही नहीं, साहित्य के किसी भी आन्दोलन के लिए चाहिये कि वह पहचान की लड़ाई के दलदल में न फंसे वरन् आंदोलन के मुख्य ध्येय (जन-जन की आवाज बने या जन जन को रास्ता दिखाये) को छूने का निरन्तर प्रयत्न करें।

साहित्य को चिरजीवी बनाने के लिये उसे आदमी से, उसके सवालों से, सवालों के जवाबों से, जोड़ना होगा। हमारे सामने कबीर और तुलसी के उदाहरण हैं, उन्होंने सामाजिक पतन के मुद्दों को उठाया ही नहीं वरन् उसके हल भी सुझाये।

तेवरी पक्ष के सन्दर्भ में कविता को पाठक में उसकी अपनत्व की भावना और उसके अधिकारों की लड़ाई के लिये चेतना जगानी होगी।

जे० ७५, जनकपुरी, अलीगढ़।

—:o:—

दो तेवरियां

(एक)

बहुत हो चुकीं, अब नयी ये नहीं हैं।
ये सड़कें, ये नहरें बनाने की बातें ॥
तुम्हारे सपन हमको पागल बनाते।
जमीं आस्मां को मिलाने की बातें ॥
हमें अब तनिक भी नहीं मोह पातीं।
पत्थर को मोती बनाने की बातें ॥

(दो)

हमने देखा है सुबह से शाम।
सर्वहारा कर रहे हैं काम ॥
सुर्खियाँ अखबार की कहतीं।
हरिजनों का मिट रहा है नाम ॥
कौन झौंपड़ियां जलाता है।
कौन होना चाहता बदनाम ॥
इसलिए हम लिख रहे हैं आज।
चीखते वक्तव्य उनके नाम ॥

—मदन मोहन उपेन्द्र

तेवरी ! भविष्य का प्रश्न

—फजल इमाम मल्लिक

बकौल आपके तेवरी यथार्थवादी ऊष्मा का संचरण है जो चेहरे पर चेहरा लगाये आदमी या समाज को बेनकाब करती है। परन्तु यह भी सच है कि रचना चाहे वह किसी भी विधा अथवा भाषा की हो यथार्थ से जुड़ी होती है। आदमी और आदमी के संबंधों के बहुत नजदीक होती है।

तेवरी क्या है ? केवल यह प्रश्न नहीं है। बल्कि प्रश्न यह भी है कि क्या यह एक विधा है ? मेरा विचार है, नहीं। कुछ लोग समय-समय पर ऐसे शगूफे उछाल कर सस्ती लोकप्रियता हासिल करना चाहते हैं जैसा कि पहले लघुकहानी, लघु व्यंग्य का हथकंडा अपनाकर लोग चर्चा का विषय बने फिर तथाकथित लघुकथाकारों की एक जमात ने "आधुनिक लघुकथा" का आविष्कार किया है। इसी क्रम में हम तेवरी को भी रख सकते हैं। यह कैसी मान्यता है आपकी कि एक तरफ तो आप तेवरी छाप रहे हैं पर दूसरी ओर जो पत्रिका तेवरी नहीं छापती उसमें वैसी ही रचना 'गजल' कह कर प्रकाशित होती है (संदर्भ-युग मर्यादा अक्टूबर ८४ अंक)। यह दोहरी नीति क्यों ? अगर आप या कुछ दूसरे लोग 'विधा' को लेकर सामने आये हैं तो फिर विधा के जोखिम से डरते क्यों हैं ?

सच पूछें तो तेवरी तुकबन्दी में स्टेटमेन्ट से ज्यादा कुछ नहीं। अधिकतर लोगों ने दुष्यन्त की शैली को अपनाकर तेवरी का रूप दिया। उन्होंने कविता और कविता की शर्तों को पूरा किये बिना विधा को जन्म दिया। उनके पास न तो भाषा है, न ही शिल्प। आज की अधिकतर तेवरियाँ फ़्लैट और सीधा-साधा एक स्टेटमेन्ट हैं जो न तो कहीं हलचल मचाती हैं न ही संप्रेषित करती है।

आपका मानना है कि गजल से यह कोई साम्य नहीं रखती, लेकिन यह ग़जल के सारे उसूलों को लेकर चलती है यानी रदीफ, काफियों की बंदिश। लेकिन अक्सर तेवरीकार इस पर चलते हुए भी इसे मात्र तुकबन्दी

Scanned by CamScanner

बना देते हैं जो शायरी के उसूलों पर पूरी नहीं उतरती। अब आप कुछ गजलों के शेर देखें —

जिसके साथ मुझे दूर तलक जाना था
सलूक उसका मेरे साथ ताजिराना था।

अब इंसानों की बस्ती का यह आलम है कि मत पूछो
लगे है आग एक घर में तो हमसाया हवा दे है।

गुल से लिपटी तितली को गिराकर देखो
आँधियों तुमने दरख्तों को गिराया होगा।

दुश्मनी लाख सही खत्म न कीजिए रिश्ता
दिल मिले या न मिले हाथ मिलाते रहिए।

दुनिया में ऐसी तमसील कहाँ मिलती
कातिल ही मुहाफिज है, कातिल ही सिपाही है।

वक्त का पत्थर हमने झेला
हम बेघर बेनाम हुए।

तो यह सारी गजलों की पंक्तियां कवितात्मकता को लिये जिन्दगी की उन तमाम सच्चाइयों पर नश्तर लगाती है, जिसे आप तेवरी द्वारा कहना चाहते हैं। आज की अधिकांश गजलें इश्को–मुहब्बत, हिज्रो–विसाल की बुनियादी रिवायतों को तोड़कर हकीकत की सख्त, खुरदरे, पथरीले धरा-तल पर खड़ी हैं। तब ऐसे में प्रश्न है तेवरी के भविष्य का—तो मेरा मानना है कि फिलहाल तेवरी की न तो अपनी कोई जमीन है और न ही अपना कोई आस्मां।

कुतुबुद्दीन लेन
दरियापुर, पटना–८००००४

—:०:—

Scanned by CamScanner

(एक प्रहार लगातार का शेष..........

ही संग्रह में प्रेयसी के बजाय देश की चिन्ता है। डा० ओमप्रकाश गुप्त "मधुर" ने प्रस्तुत संग्रह के तेवरों को मौलिक और विशिष्ट तेवर माना, जो सुरेन्द्र कुमार श्लेष के शब्दों में देश की विसंगति और नपुंसकता पर कड़ा प्रहार है। विमोचन समारोह के अंत में गोष्ठी अध्यक्ष डा० रवीन्द्र भ्रमर ने बड़े ही ओजपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत संग्रह की सराहना करते हुए कहा कि प्रस्तुत संग्रह शहीदे आजम भगतसिंह को समर्पित है आज के युग में शहीदों के लिए समय निकालने के लिए, इन नामों को लेने या कीर्तन करने के लिए इतनी ईमानदारी और फुर्सत कहाँ मिलती है। इस कृति या सार्थक सृजन के तेवरीकारों को जो क्रान्तिकारी विचारधारा से जुड़े हुए हैं, मैं शिव का तीसरा नेत्र मानता हूँ जो आज की सड़ी-गली व्यवस्था में उत्पन्न असंगतियों के कारण खुला है। मेरी ओर से ढेरों शुभकामनाएं।

विमोचन समारोह के दूसरे सत्र में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें डा० अशोक शर्मा, डा० वेद प्रकाश "अमिताभ", डा० ओमप्रकाश गुप्त "मधुर" प्रदीप प्रशांत, गजेन्द्र बेबस, सुहेल अख्तर, सुरेन्द्र कुमार श्लेष, अपनी सूक्ष्म संवेदना एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए सराहे गये। श्री विजयपाल सिंह, गिरीश गौरव, अनिलकुमार 'अनल', सुरेश त्रस्त, रमेशराज ने अपनी तेवरियों के माध्यम से आज की विसंगतियों पर गहरा प्रहार किया। इसके अतिरिक्त ब्रह्मदेव, मुहम्मद आरिफ, डी० एस० शुक्ला आदि ने भी काव्य पाठ किया।

डा० रवीन्द्र भ्रमर ने जहाँ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी तेज तर्रार रचनाएं पढ़ीं वहीं श्रोताओं को शृंगार रस में डुबोकर भाव-विभोर कर दिया।

समीक्षालय

ठहराव का दर्द और हालातों की बेचैनी

सामान्यतः मदन मोहन उपेन्द्र की रचनाओं में किरण भर उजाले की आकांक्षा है और पीड़ित मानवता के लिए पक्षधरता भी। वह पक्षाघात की तरह पसरे संकल्पों से अच्छी तरह बाकिफ है और इस बूढ़ी शताब्दी के शेषान्त पर तक्षकों के वंशजों से आदमीयत की सुरक्षा का संजीदा सोच लिये है इसी लिये वह जनमेजय को पुरुषार्थ का प्रतीक मानते हैं। अपने पूर्व संकलन में 'नए भोर के लिये' कवि की जो आन्तरिक लालसा रही है वही विकसित समय में 'सवेरा होने वाला है' के कवि में परिलक्षित होती है यही उसकी भीतरी रचनात्मक सहृदयता है।

तेवरीपक्ष-6

समीक्ष्य कृति में तीन खण्ड हैं। पहला खण्ड मूलतः आशा-आस्था-संघर्ष और साधना पर आधारित है। कवि का जनवादी स्वर आज की वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक मुआइना करता है और आदमीयत की असीम सम्भावनाओं के प्रगतिशील रास्ते का स्पष्ट संकेत देता है यथा :—

सर्वग्राही छाँव/मत दो आदमी को। एक अनुभव/कुन्द होकर/रह गया है।।

कवि ने सूर और तुलसी की जन भावना की दुहाई भी दी है और विस्फोटक स्थितियों में परिवर्तन का संकेत भी, लेकिन कई जगह रचनाएं सतही और बड़बोलेपन से ग्रस्त हैं।

'पसीना चन्दन बनाना होगा' खण्ड में उपेन्द्र ने गजलों पर हाथ आजमाए हैं उनकी रचनात्मक शक्ति इस दिशा में बहुत सार्थक है। बहुत अच्छे प्रतीक, विम्ब और सही शब्दावली पूरे परिवेश को उजागर करने में समर्थ है। अस्तु—

दमन के काफिले बढ़ते चले आते। / चमन में आदमीयत को उगाना है।।

'धूप की तलाश' अंश में कवि के रोमानी तेवर दृष्टव्य हैं इनमें 'रीते एकाकी क्षण' 'उम्र के तनावकुण्ठा में डूबे दिन' 'अनमने पड़ाव' और 'अनजाने सफर' की मादक यादें चित्रित हुई हैं।

कवि उपेन्द्र की जहाँ स्वतः स्फूर्ति और अनुभूति प्रधान रचनाएं हैं वहाँ अभिव्यक्ति बहुत समर्थ रही है लेकिन जहाँ जनवादी आक्रोश और परिवर्तन लाने की छटपटाहट है, वहाँ रचनाएं पाठक के भीतर तक नहीं धँसती। फिर भी रचनाएं अपनी जानदार प्रस्तुति में अपेक्षित प्रभाव छोड़ती हैं। इनमें ठहराव का दर्द, हालातों की बेचैनी और रोशनी के हासियों की तलाश है।

समीक्षक :
डा० संतोष कुमार तिवारी
शासकीय महाविद्यालय
दमो (मध्य प्रदेश)

समीक्ष्य कृतिः सवेरा होने वाला है
कवि— मदन मोहन उपेन्द्र
प्रकाशक—जनहित प्रकाशन, मण्डी रामदास, मथुरा
मूल्य––सात रुपये

—:०:—

सेवा में,

श्री..

....

....

संपादक, प्रकाशक, मुद्रक—रमेश राज, १५/१०९, ईसा नगर, अलीगढ़ द्वारा सार्थक-सृजन प्रकाशन के लिये सार्थक मुद्रण केन्द्र, मामू भांजा अलीगढ़ से मुद्रित।

Scanned by CamScanner